

वैदिक यज्ञ विमर्श एवं पर्यावरण (स्मार्त यज्ञों के विशेष संदर्भ में)



पीएचडी (Ph.D) - (वैदिक अध्ययन) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-संक्षेपिका

शोध-निर्देशक

डॉ. देवेन्द्र सिंह

विभागाध्यक्ष

संस्कृत भाषा एवं साहित्य विभाग

शोधार्थी

ऋषि कान्त शर्मा

पीएचडी (Ph.D) - वैदिक अध्ययन

नामाङ्कन सङ्ख्या- En16-00035

भाषा,साहित्य एवं कला प्राध्ययन केन्द्र

साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय

शैक्षणिक परिसर साँची, रायसेन (मध्यप्रदेश) भारत

2021

शोधार्थी द्वारा घोषणा-पत्र

मैं एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि यह शोध-कार्य “वैदिक यज्ञ विमर्श एवं पर्यावरण (स्मार्त यज्ञों के विशेष संदर्भ में)” डॉ. देवेन्द्र सिंह (शोध-निर्देशक) एवं, विभागाध्यक्ष, संस्कृत भाषा एवं साहित्य विभाग के मार्गदर्शन में किया मेरा मौलिक शोध-कार्य है जिसे विभागीय शोध- समिति द्वारा अनुमोदित किया गया है।

मैं, यह घोषणा करता हूँ कि मेरी जानकारी के अनुसार इस शोध-प्रबन्ध में किसी प्रकार का ऐसा तथ्य उद्धृत नहीं किया गया जो इस विश्वविद्यालय या किसी अन्य विश्वविद्यालय के समक्ष किसी उपाधि हेतु प्रस्तुत किया गया हो। साथ में यह घोषणा करता हूँ कि-

१.मैंने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम २०१८ के माप दण्डों के अनुसार एक सत्र का कोर्स वर्क सफलता पूर्वक पूर्ण कर लिया है।

२.शोध-प्रबन्ध प्रस्तुति पूर्व सेमीनार भी किया है और दिए गये निर्देशों / सुझावों के आधार पर संशोधन को सफलतापूर्वक शामिल किया है।

३.मेरे द्वारा शोध-प्रबन्ध से सम्बंधित शोध कार्य को ISSN / रेफर्ड जर्नल में दो शोध-पत्र प्रकाशित किया गया है। जिसकी छाया प्रति शोध-प्रबन्ध के अंत में संलग्न है मैंने कांफ्रेंस / संगोष्ठी में शोध-पत्र भी प्रस्तुत किये हैं।

४.मेरे द्वार प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध में कोई भी सामग्री, किसी अन्य शोध से या किसी प्रकाशित सामग्री का हिस्सा नहीं है यदि किसी साहित्यिक सामग्री को लिया गया है तो उसका यथा स्थान सन्दर्भ दे दिया गया है।

दिनांक

स्थान.....

शोधार्थी

ऋषि कान्त शर्मा

सर्वाधिकार

मैं, ऋषि कान्त शर्मा एतद् द्वारा घोषणा करता हूँ कि साँची बौद्ध-भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय अकादमिक परिसर साँची, रायसेन ,मध्यप्रदेश द्वारा इस शोध-प्रबन्ध “वैदिक यज्ञ विमर्श एवं पर्यावरण (स्मार्त यज्ञों के विशेष संदर्भ में)” को शैक्षणिक/अनुसंधान उद्देश्य से इलेक्ट्रोनिक या प्रिंट प्रारूप में उपयोग करने के अधिकार होंगे ।

नोट – शोधार्थी अथवा अन्य के द्वारा शोध-प्रबन्ध के आँकड़ों/निष्कर्षों का प्रयोग व्यक्तिगत रूप से किया जा सकेगा बशर्ते कि यथा स्थान विश्वविद्यालय का उल्लेख किया जाए ।

शोधार्थी

दिनांक

ऋषि कान्त शर्मा

स्थान

नामाङ्कन सङ्ख्या – En16-00035

प्रमाण पत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध जिसका विषय “वैदिक यज्ञ विमर्श एवं पर्यावरण (स्मार्त यज्ञों के विशेष संदर्भ में)” श्री ऋषि कान्त शर्मा द्वारा किया गया शोध-कार्य है जिसे साँची बौद्ध -भारतीय ज्ञान अध्ययन विश्वविद्यालय में पीएचडी (Ph.D)-उपाधि वैदिक अध्ययन के लिए मेरे निर्देशन में पूर्ण किया गया है।

मेरी जानकारी के अनुसार :

- १.यह शोधार्थी का मौलिक कार्य प्रतीत होता है।
- २.यह शोध कार्य विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के दिशा निर्देशों को पूरा करता है।
- ३.विश्वविद्यालय की पीएचडी (Ph.D) से सम्बंधित अध्यादेय की आवश्यकता को पूरा करता है।

दिनांक

हस्ताक्षर

स्थान

शोधनिर्देशक

हस्ताक्षर

विभागाध्यक्ष

हृदयपुष्पांजलि

या सृष्टिः स्रष्टुराद्या वहति विधिहुतं या हविर्या च होत्री
ये द्वे कालं विधत्तः श्रूतिविषयगुणा या स्थिता व्याप्य विश्वम् ।
यामाहुः सर्वबीजप्रकृतिरिति यया प्राणिनः प्राणवन्तः
प्रत्यक्षाभिः प्रपन्नस्तनुभिरवतु वस्ताभिरष्टाभिरीशः ॥

‘श्री मात्रे नमः’ मैं अपने इष्टदेव अष्टाभिरीशः महाकाल एवं आराध्य आदिशक्ति माँ भगवती के पदकमलों में शाष्टांग नमन करता हूँ। इनकी कृपा एवं आशीर्वाद से इस शोध-प्रबन्ध को पूर्ण करने में सफलता प्राप्त हुई। एवं उस आदिब्रह्म ‘यस्य निःश्वसितं वेदाः’ सर्वशक्तिमान् सर्वान्तर्यामी सर्वज्ञ ब्रह्मवेत्ता परमात्मा परमेश्वर के चरण कमलों में श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ। जिनके ज्ञानरूपी आलोक से सम्पूर्ण जगत् अनादिकाल से निरन्तर अज्ञान रूपी अन्धकार से प्रकाश की ओर अग्रसर हो रहा है। परम् श्रद्धेय गुरु प्रो. रामचन्द्र भट्ट आचार्य जी (कोटेमने) जिनके प्रोत्साहन एवं आशीर्वाद से इस महनीय कार्य को सहज स्वीकार्य किया उन्हें अष्टांगदण्डवत प्रणाम करता हूँ।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध अत्यंत परिश्रम एवं एकाग्रता का कार्य है। जिस कार्य के लिए एक निश्चित योजना तथा मार्गदर्शन की नितान्त आवश्यकता होती है। इस शोध प्रबंध का कार्य मेरे स्वयं के सामर्थ्य से पूर्णता को प्राप्त करना सुलभ नहीं था। इस शोध-प्रबन्ध कार्य को पूर्ण कराने में मेरे शोध-निर्देशक परम् आत्मीय विद्वान् गुरुशिष्य परम्परा के अभिवर्धक विभागाध्यक्ष एवं सहायक प्राध्यापक डॉ. देवेन्द्र सिंह सर का सानिध्य व आशीर्वाद सदैव प्राप्त होता रहा और भविष्य में भी ऐसा मार्गदर्शन मिलता रहेगा। इसी कामना से उन्हें सादर प्रणाम एवं श्रद्धा सुमन समर्पित करता हूँ।

इसी क्रम में संस्कृत विभाग के सहायक प्राध्यापक डॉ. विश्वबंधु सर एवं डॉ. नवीन दीक्षित सर, डॉ. प्रभाकर पाण्डेय सर, डॉ. राहुल सिद्दार्थ सर, डॉ. उपेन्द्रबाबू खत्री सर का मेरे शोध कार्य की पूर्ति में महनीय सहयोग रहा है और अपनी रिसर्च कमेटी सदस्य आंग्लभाषा के विभागाध्यक्ष डॉ. नवीन कुमार मेहता सर व विश्वविद्यालय के समस्त प्राध्यापक एवं प्राध्यापिकाओं को धन्यवाद व सादर प्रणाम करता हूँ।

अपनी माता श्रीमति कृष्णा भार्गव एवं पिता श्रीमान् विनोद कुमार भार्गव को अष्टांगदण्डवत एवं श्रद्धा सुमन समर्पित करता हूँ। एवं मेरी हृदयसाम्राज्ञी ने ‘पत्युर्नो यज्ञ संयोगे’ से मेरे इस प्रबन्ध को मेरे नाम ‘ऋषि’ को भी ‘साक्षात्कृतधर्माणं ऋषयो बभूवुः’ एवं

‘यागादिरेव धर्मः’ से उक्तियुक्त पूर्ण कर शोधसार्थक किया तथा अपने परिवार में मेरे अग्रज (असि.प्रो.पाणिनि विश्वविद्यालय) डॉ.उपेन्द्र भार्गव जी एवं डॉ.संकल्प मिश्र जी तथा अनुज भ्राता शशिकांत भार्गव और गणमान्य मित्रों में दीपक तिवारी, अजीत, नितिन गावकरे, दीपक आर्य, विकास आर्य, नीतेश मिश्र, शिवशंकर होत्ता, जगन्नाथरथ , बालचन्द्रभट्ट आदि के सहयोग से यह शोध-प्रबंध संपन्न हो सका । सभी का सहृदयता से धन्यवाद ज्ञापनकरता हूँ ।

हमारे विश्वविद्यालय के पुस्तकालय प्रभारी अमित ताम्रकार व हरीश असाठी, प्रकाश मुकाती जी को आभार ज्ञापित करता हूँ। अंत में उन सभी ग्रन्थकारों, व शोध पत्र एवं शोधार्थियों का आभारी हूँ जो परोक्ष व अपरोक्ष सहयोग से यह कार्य सम्पन्न करने के निमित्त बने । अतः पुनः सभी का सहृदयता से धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ ।

धन्यवाद

शोधार्थी

ऋषि कान्त शर्मा

शब्दसंक्षेपिका

ऋक्.	ऋग्वेद
यजु.	यजुर्वेद
शुक्ल. यजु.	शुक्लयजुर्वेद
अथर्व.	अथर्ववेद
तै. सं.	तैत्तिरीयसंहिता
काठ.सं.	काठकसंहिता
मैत्रा.सं.	मैत्रायणि संहिता
कपिष्ठल	कपिष्ठल संहिता
कौषी. ब्रा.	कौषीतकि ब्राह्मण
शत. ब्रा.	शतपथ ब्राह्मण
गो . ब्रा.	गोपथ ब्राह्मण
ऐ. ब्रा.	एतरेय ब्राह्मण
ताण्ड्य ब्रा.	ताण्ड्य ब्राह्मण
जै.ब्रा.	जैमिनी ब्राह्मण
तै. आ.	तैत्तिरीयआरण्यक
कौषी.गृ.	कौषीतक गृह्यसूत्र
पा. गृ.	पारस्कर गृह्यसूत्र
आ. गृ.	आपस्तम्ब गृह्यसूत्र
शां. गृ.	शांख्यायन गृह्यसूत्र
खा. गृ.	खादिर गृह्यसूत्र
हिरण्य. गृ.	हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र
गो. गृ.	गोभिल गृह्यसूत्र
आश्व. गृ.	आश्वलायन गृह्यसूत्र
मा. गृ.	मानव गृह्यसूत्र
बौ. गृ.	बौधायन गृह्यसूत्र
कौ. गृ.	कौशिक गृह्यसूत्र

गौ. धर्म.	गौतमधर्मसूत्र
बौ. धर्म.	बौधायनधर्मसूत्रम्
वाच.	वाचस्पत्यम्
शब्द .	शब्दकल्पद्रुम
मनु	मनुस्मृति
जैमि.सू.	जैमिनिपूर्वमीमांसासूत्र
अष्टा.	पाणिनि अष्टाध्यायी
देवीभा. महा	देवी भागवत्तमहा पुराण
मुण्ड.उप	मुण्डकोपनिषद्
याज्ञ.स्मृ	याज्ञवल्क्य स्मृतिः
शंख. स्मृ	शंखस्मृति
भ.गी.	श्रीमद्भगवद्गीता

भूमिका

‘यज्ञ’ शब्द को देवपूजा, संगतिकरण एवं दानादि अर्थ के परिचायक ‘यज’¹ धातु में नङ्² धातु में नङ् विधान से किया गया है । यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षनङ्..... सूत्रेण ‘नङ्’ प्रत्यये यज्ञ शब्द व्युत्पद्यते । अतः यज्ञ इसी क्रिया का नाम है जिसमें देवपूजा के द्वारा यज्ञकर्ता का देवताओं से संयोग तथा निस्वार्थ भाव से समर्पण हो। देवपूजा से मनुष्य का ज्ञान का उद्भव होता है। ज्ञान की पराकाष्ठा से ही वह आध्यात्मिक आचारापन्न हो जाता है तथा पूर्णतः समर्पित भाव से दानात्मक यज्ञ करता है फलतः वह सदा उन्नत रहता है। देवताओं को लक्ष्य करके ही हवि का परित्याग करना यज्ञ है।³

वस्तुतः वैदिक यज्ञ दो प्रकार के होते हैं श्रौत एवं स्मार्त। जिन यज्ञों का विधान संहिता, ब्राह्मण ग्रन्थों एवं श्रौतसूत्रों में उपलब्ध होता है उन्हें श्रौतयज्ञ कहते हैं। इनके अतिरिक्त जिन पाकयज्ञों का विवरण गृह्यसूत्रों में पाया जाता है उन्हें ‘पाकयज्ञ’ अर्थात् स्मार्त यज्ञ कहते हैं। श्रौतयज्ञों को श्रौत संस्था तथा पाकयज्ञों को पाकसंस्था भी कहा जाता है। श्रौतयज्ञ दो प्रकार के होते हैं - सोमयागसंस्था तथा हविर्यागसंस्था। सोम संस्थाओं में इक्कीस यज्ञों का उल्लेख प्राप्त है। उक्त इक्कीस यज्ञों की संख्या की पुष्टि अन्यत्र ब्राह्मणग्रंथों में भी होती है। जिज्ञासु होने के नाते कि वे इक्कीस यज्ञ कौन-कौन से हैं- प्रत्युत गोपथकार की अभिव्यक्ति है-

‘सप्त सुत्याः सप्त च पाकयज्ञाः हविर्यज्ञाः सप्त तथैकविंशतिः’।

¹ यज् देवपूजासंगतिकरणदानेषु। सि. कौ., भ्वादि प्रकरण धातु सं० १००२, तत्त्वबोधिनी व्याख्या सहित

² यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षनङ्। पा. अष्टा.- ३.३.९०

³ द्रव्यं देवता त्यागः। कात्या.श्रौ.- १.२२.

अर्थात् सप्त पाकयज्ञ सप्त हविर्यज्ञ तथा सप्त सोमयज्ञ ये सभी मिलकर इक्कीस यज्ञ हो जाते हैं इनका नाम्रा विभाजन इस प्रकार हुआ है –

१.पाकसंस्था:

१. प्रातःहोम २. सायंहोम ३. पितृयज्ञ ४. नवयज्ञ ५. वैश्वदेव ६. स्थालीपाक ७. अष्टका

२. हविर्यज्ञ संस्था:

१. अग्न्याधेय २. अग्निहोत्र ३. दर्श पौर्णमास ४. नवसस्येष्टि ५. चातुर्मास्य ६. पशुबन्ध

७. सौत्रामणि

३. सोमसंस्था:

१. अग्निष्टोम २. अत्यग्निष्टोम ३. उक्थ्य ४. षोडशी ५. वाजपेय ६. अतिरात्र ७. अप्तोर्याम

कौषीतकगृह्यसूत्र में वर्णित पाकसंस्था के यागों - आग्रयणकर्म, आग्रहायणी, वैश्वदेव, अष्टका, सर्पबलि, श्रवणा कर्म, आश्वयुजी तथा वृषोत्सर्ग हैं, जिनका विस्तृत परिशीलन प्रस्तुतग्रन्थ के इस अध्याय में हुआ है। पाक शब्द अल्प या छोटे होम, हवन का प्रतीक है। अतः पाकयज्ञ छोटे-छोटे यज्ञों को कहते हैं। पाक शब्द स्मार्त का भी वाचक है। भगवद्गीता में बारह प्रकार से यज्ञों की गणना हुई है। जिन्हें नामतः प्रस्तुत यहाँ किया जा रहा है-

१. ब्रह्मार्पणयज्ञ २. दैवयज्ञ ३. योगयज्ञ ४. स्वाध्याययज्ञ ५. ज्ञानयज्ञ ६. प्राणयज्ञ ७. द्रव्ययज्ञ ८. तपोयज्ञ ९. ब्रह्माग्नियज्ञ १०. संयमाग्नियज्ञ ११. इन्द्रियाग्नियज्ञ १२. योगाग्नियज्ञ इन समस्त यज्ञों को ब्रह्मार्पणभाव से सम्पादित किया जाना चाहिए ।

यज्ञ वैदिक धर्म की प्रतिष्ठा के द्योतक हैं। ऋग्वेद के प्रथम मन्त्र में 'यज्ञ' शब्दकी मीमांसा हुई है।⁴ सृष्टि की निष्पत्ति यज्ञ से हुई है।⁵ यज्ञ से यजमान की समस्त कामनाओं की सिद्धि होती है। 'सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः'।⁶ अर्थात् यज्ञशील यजमान की समस्त कामनाएँ सफल हों प्रार्थना स्वरूप इस मंत्र से यज्ञधूमाग्नि सत्य एवं उत्तम फल के प्रतिपादक होते हैं यज्ञ से धूम और धूम से बादल एवं बादलों से वृष्टि होती है।⁷ इससन्दर्भ में अन्यत्र भी उल्लिखित है-

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ।

आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेरन्नं ततः प्रजाः॥⁸

अर्थात् अग्नि में समर्पित आहुतियाँ धूम के माध्यम से सूर्य की किरणों में समष्टि हो जाती हैं और सूर्य की किरणों से वृष्टि होती है तब वृष्टि से अन्न और अन्न से प्रजा उत्पन्न होती है। इस विषय में भगवान् श्री कृष्ण का कथन है कि-

अन्नाद्भवन्ति भूतानि पर्जन्यादन्नसम्भवः ।

यज्ञाद्भवति पर्जन्यो यज्ञः कर्मसमुद्भवः ॥⁹

अर्थात् अन्न में समस्त प्राणियों की सत्ता विद्यमान है, अन्न वर्षा से, वर्षा यज्ञ से तथा यज्ञ शुभ कर्मों से उत्पन्न होते हैं। अतः यज्ञ सभी चराचर के मैरुदण्ड हैं क्योंकि यज्ञ नहीं होंगे

⁴ अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् । होतारं रत्नधातमम् । ऋक्- १.१.१

⁵ वही. १०.९०.७

⁶ वही. १०८.११६.

⁷ अग्निर्वै धूम्रो जायते धूमादभ्रमभ्रमाद् वृष्टिः । शत. ब्रा.- ५१७.५.३.

⁸ मनु. ३.७६

⁹ श्रीमद्. गी.- ३.१४

तो वर्षा नहीं होगी, वर्षा नहीं होगी जो अन्न, जीवनोपयोगी वनस्पतियों एवं सभी चराचर की सत्ता भी सम्भव नहीं है।

यज्ञ की गरिमा एवं सारगर्भिता को शब्दों से अभिव्यक्त किया जाना सम्भव नहीं है क्योंकि वैदिक वाङ्मय में यज्ञ की विशेषताओं तथा उपयोगिताओं पर नाना प्रकार से प्रकाश डाला गया है। यज्ञ को सम्पूर्ण विश्व की नाभि कहा गया है।¹⁰ नाभि प्रायः शरीर का मुख्य नियन्त्रक स्थान है। यह शरीर की समस्त नसों का केन्द्रीय जोड़ होता है। अतः यह वैज्ञानिक दृष्टिकोण भी रखता है। यज्ञ को प्रजापति¹¹, विष्णु¹² तथा देवरथ¹³ की संज्ञा से विभूषित किया गया है। इसीलिए यज्ञ को श्रेष्ठ कर्म कहा गया है।¹⁴

यज्ञों से ही सम्पूर्ण जड़ चेतन संसार की निष्पत्ति हुई है।¹⁵ यज्ञ को सर्वस्व कहा जाए इसमें कोई सन्देह नहीं है क्योंकि यज्ञ लौकिक एवं पारलौकिक ऐषणाओं का पोषक है। यज्ञ से उत्तम सन्तति, पशुधन, आत्मज्ञान एवं धनधान्य की प्राप्ति होती है।¹⁶ यज्ञ से समस्त पापों तथा रोगों का उपशमन होता है।¹⁷ यज्ञ से मनुष्य समस्त ऋणों से मुक्त हो जाता है।¹⁸ अतः यज्ञ ही चराचर विश्व के महत्वपूर्ण सोपान हैं।

¹⁰ अयं यज्ञो विश्वस्य भुवनस्य नाभिः । अथर्व.- ९.५.१०.१४

¹¹ प्रजापतिर्वै यज्ञः । कौषी.ब्रा.-१.३.१

¹² यज्ञो वै विष्णुः । वही.- १८.८

¹³ देवरथो वा एष यद्यज्ञः । वही.- ७.७

¹⁴ यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म । शत. ब्रा.- १.७.४.५

¹⁵ तस्माद् यज्ञात् सर्वतः तस्माद्यजुस्तस्मादजायत। ऋक्. -१०.९०.८९.

¹⁶ आ. गृ.- ११०१२

¹⁷ श्रीमद्. गी.- ३.१३

¹⁸ यज्ञेन देवेभ्यः प्रजया पितृभ्यः एष वा अनृणः । तैत्ति. सं.- ६.३.१०

महर्षि पाणिनी की 'यज्ञ' शब्द की व्याख्या के आधार पर शतपथ ब्राह्मण के भाष्यकार पं. बुद्धदत्तदेव विद्यालंकार ने व्युत्पत्ति युक्त परिभाषा दी है –

सामुदायिकं योगक्षेममुद्दिश्य सामुदायाङ् गतया क्रियमाणं कर्म यज्ञः ।

अर्थात् सामूहिकता का अंग बनकर समूह के योगक्षेम के लिये जो कार्य किये जाते हैं, वे यज्ञ कहलाते हैं । यज्ञ शब्द की मीमांसाआचार्य यास्क ने इस प्रकार की है –

क. यज्ञः कस्मात् प्रख्यातं यजति कर्मेति नैरुक्ताः -¹⁹

ख. याच्यो भवतीति वा -

ग. यजुरुन्नो भवतीति वा -

घ. बहु कृष्णाजिन इत्यौपमन्यवः -

ङ. यजुंष्येनं नयन्ति इति वा –

अर्थात् - (क) यज्ञ शब्द आहुति में प्रसिद्ध है । (ख) यज्ञ से किसी अभीष्ट वस्तु की कामना की जाती है। । (ग) यजुर्वेदीय मंत्रों से आहुति प्रदान की जाती है। (घ) यागादि कर्म कृष्ण मृगचर्म बिछाकर किये जाते हैं, जो वेदों के प्रतीक हैं। (ङ) यजुर्वेद के मन्त्रों से यज्ञ कर्म को संचालित करते हैं।

प्रसिद्ध अमरकोश के टीकाकार ने यज्ञ शब्द का व्युत्पत्ति परक अर्थ सम्पादित किया है -

¹⁹ निरुक्त - २.५.७

ईज्यते असौ अनेन तत्र वा - जो पदार्थ यजन किया जाए, अथवा यजमान द्वारा जिस जगह यजन हो, वही यज्ञ है।

महर्षि पाणिनी ने इन व्यापक यज्ञों को देव-पूजा, संगतिकरण और दान कहा है। देव शब्द से अनेक अर्थों का संकेत होता है। वेद मन्त्रों की भी देव संज्ञा है क्योंकि उसके कारण विद्याओं का द्योतन और प्रकाशन होता है। वेद का ज्ञान प्रकाशित करने के कारण और सूर्य चन्द्र आदि का प्रकाशन करने के कारण ईश्वर को देव शब्द से जाना जाता है। ब्राह्मण ग्रन्थों में पूजनीय विज्ञान को भी देव संज्ञा से अभिहित किया गया है। इस प्रकार वेदमंत्रों, परमात्मा एवं विद्वान के प्रति भक्ति-भाव रखते हुए उनका ज्ञान और उनका ग्रहण देव-पूजा कहलाती है। इस प्रकार की 'देव-पूजा' पाणिनी व्याकरण के अनुसार पहले प्रकार की देवपूजा है।

यज्ञ शब्द का दूसरा अर्थ 'संगतिकरण' है, अत्यंत प्रीति एवं भक्ति के साथ मिलकर सत्पुरुषों की सत्संगति आराधना करना संगतिकरण कहलाता है। इस प्रकार के संगतिकरण को महर्षि पाणिनी यज्ञ के द्वितीय अर्थ से समझाते हैं। धन, विद्या एवं अन्य वस्तुओं को उचित पात्रों को 'दान' देकर सदुपयोग करना 'यज्ञ' शब्द का तीसरा अर्थ प्रतिपादित करता है। तात्पर्य यह है कि है यज्ञ उस कर्म को कहते हैं जिसमें देवताओं की पूजा की जाती हो, मिलकर काम हो और निःस्वार्थ भाव से परहित दान हो।

प्रथम अध्याय

यज्ञों का महत्व एवं स्मार्तयज्ञों का विस्तार

यज्ञ ही सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है। यह भारतीय मनीषियों के द्वारा प्रदान की गई ऐसी महत्वपूर्ण देन है जिसे सर्वाधिक फलदायी एवं समग्र पर्यावरण केन्द्र (इको सिस्टम) के ठीक बने रहने का आधार माना जा सकता है। यज्ञ हमारी संस्कृति का आधार इष्ट रहा है तथा यज्ञ के बिना हमारे किसी क्रिया कलाप की कल्पना भी नहीं की जा सकती।

१. यज्ञ के नाम

वैदिक कोश निघण्टु में यज्ञ के १५ नामों का उल्लेख है-

यज्ञः, वेनः, अध्वरः, मेघः, विदथः, नार्यः, सवनम्, होत्रा, इष्टिः, देवताता, मखः, विष्णुः इन्दुः प्रजापतिः, धर्मः इति पञ्चदश नामानि।²⁰

अमरकोशकार ने सव, याग, सप्ततन्तु एवं ऋतु को भी यज्ञ के पर्याय माना है²¹

१. १ यज्ञ –

यज्ञ मीमांसाकारों ने यज्ञ की विभिन्न निरुक्तियां की हैं, जिनसे यज्ञ के पर्यावरणीय प्रभाव पर प्रकाश पड़ता है ॥

क. इज्यन्ते सम्पूजिताः तृप्तिमासाद्यन्ते देवा अत्रेति यज्ञाः।

²⁰ निघण्टु - ३.१७

²¹ अमरकोश - २.७.३

जिस कार्य में देवगण पूजित होकर तृप्त हों, उसे यज्ञ कहते हैं।

ख. येन सदुष्ठानेन इन्द्रप्रभृतयो देवाः सुप्रसन्नाः सुवृष्टिं कुर्युस्तत् या पदाभिधेयम्।

जिस उत्तम अनुष्ठान से सूर्यादि देवगण, अनुकूल वृष्टि करें, उसे यज्ञ कहते हैं।

ग. येन सद्नुष्ठानेन सम्पूर्णविश्वं कल्याणं भवेदाध्यात्मिकाधिदैविकाधिभौतिकापत्रयोन्मूलनं सुकरं स्यात् तत् यद्वपदामिधेयम्।

जिस अनुष्ठान से सम्पूर्ण विश्व का कल्याण हो, आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों तापों का उन्मूलन सरल हो जाए उसे यज्ञ कहते हैं।

१. २ वेन –

अजतेः घापृवस्यज्यतिम्यो नः, इति न प्रत्ययः, वीभावः।²²

(अज धातु से न प्रत्यय होकर वी भाव होने से वेन शब्द बना है।)

क. गच्छत्यनेन स्वर्गम्। (इससे यजमान स्वर्ग को प्राप्त करता है।)

ख. तेनात्र देवता काम्यन्ते वा।²³ उस हवि से देवगण, यहां बुलाए जाते हैं।

१. ३ अध्वर –

संहिता तथा ब्राह्मणग्रंथों में यज्ञ के लिये अध्वर शब्द का प्रयोग किया गया है-

²² उणादि कोश - ३.६

²³ निघण्टु - ३.१७.२

क. अध्वर्तव्या वा इमे देवा अभूवन्निति तदध्वरस्याध्वरत्वम् ।²⁴

(सभी देवगण यज्ञ के नायक होते हैं, इसलिये अध्वर का अध्वरत्व है।)

आचार्य यास्क ने यज्ञ के पर्याय अध्वर शब्द का निशक्ति पूर्वक अर्थ किया है।

ख. अध्वर इति यज्ञनाम । ध्वरति हिंसाकर्मा तत्प्रतिषेधः।²⁵

अध्वर यह यज्ञ का नाम है । ध्वर, धातु हिंसार्थक है, वह जिसमें न हो, वह यज्ञ अध्वर कहलाता है।

ग. असुर लोग, देवताओं और यजमानों की हिंसा करना चाहते थे किन्तु वे उसमें असफल हुए, हार गए अतः यज्ञ का नाम अध्वर हुआ है ।

देवान्ह वै यज्ञेन यजमानान्सपत्ना असुरा दुधूंषश्चक्रुः ते ॥

दुधूर्षन्त एव न शेकुधूर्वितुं ते परावभूवुस्तस्माद्यज्ञोऽध्वरो नाम ॥²⁶

घ. अमर कोश के टीकाकार की निरुक्ति है -

न ध्वरति, अध्वानं राति वा।

जो कुटिलता रहित है या जो मार्ग प्रदान करता है, वह अध्वर है ।

१. ४ मेघ -

²⁴ तै. सं. - ३.२.३

²⁵ निरुक्त - १.३.८

²⁶ शत.ब्रा.-१.४.१.४०

मेघ का टीकायुक्त व्युत्पत्ति परक अर्थ है -

क. गच्छन्त्यत्र देवता हविर्गृहीतुम्²⁷ -

जहां देवगण, हवि ग्रहण करने के लिये जाते हैं। दक्षिणार्थ वा सदस्यात् - (जहां यजमान से दक्षिणा पाने विदद् गण जाते हैं। हिनस्त्यनेन पापं वा - इससे पाप को विनष्ट किया जाता है।)

ख. आचार्य सायण ने मेधृ संगमे धातु से बने मेध शब्द का अर्थ निरुक्ति पूर्वक दिया है -

मेध्यते देवैः संगम्यते इति मेधं हविः -

(देवों के द्वारा जो हवि, ग्रहण की जाती है, वह यज्ञ, मेध है।)

१. ५ विदथ-

धात्वर्थ के अनुसार निरुक्त के टीकाकार की निरुक्ति है।²⁸

क. ज्ञायते हि यज्ञः - जानने योग्य ही यज्ञ

ख. लभते हि दक्षिणादिरत्र - दक्षिणा प्राप्त करना भी एक प्रकार का यज्ञ है।

ग. विचार्यते हि विद्वद्भिः - विद्वानों के द्वारा चिन्तन करने की योग्यता।

घ. भावयत्यनेन फलम् - वांछित कामनाओं की प्राप्ति होती है।

१. ६ नार्यः -

नृनये धातु से बने नार्य शब्द का निरुक्ति पूर्वक अर्थ है -

²⁷ निघण्टु - ३.१७.७

²⁸ निघण्टु - ३.७.७.

क. नयति स्वर्गं कर्तारम् -

जो यज्ञ करने वाले को विशिष्ट स्वर्ग के सुखों को प्राप्त कराता है।

ख. नीयतेऽयमनुष्ठानेन वा -

यह अनुष्ठान से आगे बढ़ाया जाता है।

१. ७ सवनम् -

सूयते सोमो एष्विति²⁹ का अर्थ सायणाचार्य ने किया है -

क. जिसमें सोम टपकाया जाता है, वह यज्ञ सवन है।

ख. अभिपूयतेऽस्मिन् स्तोमः³⁰ निघण्टु के टीकाकार कृत अर्थ जिसमें वेद-मन्त्र गाए जाते हैं।

१. ८ होत्रा -

आचार्य यास्क ने होत्र का भाष्य होतृकर्म किया है, जिसका अर्थ यज्ञ होता है। एवं आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री ने होत्र का अर्थ वर्षारूपी किया है - ऋग्वेद-भाषाभाष्य तथा निघण्टु टीकाकार ने लिखा है -

दीयतेऽस्मिन् हविः

जिसमें हवि दी जाती है वह यज्ञहोत्र है

१. ९ इष्टि -

²⁹ ऋक् - १. १६.८

³⁰ निघण्टु - ३. १७.७

ब्राह्मण ग्रन्थ में इष्टि के इष्टित्व पर प्रकाश डालते हुए उसे ऐश्वर्य प्राप्ति (इन्द्रत्व) का साधन कहा गया है -

क. तम् (इन्द्रं देवाः) इष्टिभिरन्विच्छन्, तमिष्टिभिरन्दविन्दन्, तदिष्टीनामिष्टित्वम् ।³¹

देवताओं ने उस इन्द्र को इष्टियों के द्वारा पाने की इच्छा से यज्ञों के द्वारा पा लिया, यही इष्टियों का इष्टित्व है ।

ख. सायण भाष्य में - इष्टये यजतेभवि क्तिनि सम्प्रसारणम् - धातु प्रत्यय से बने इष्टि शब्द की निरुक्ति इस प्रकार दी गई है -

इष्टयः एष्टव्या भोगाः सर्वफलसाधका यागा वा सन्ति । अर्थात् समस्त भोग्य फलों को सिद्ध करने वाला यज्ञ, इष्टि है।

ग. निघण्टु के टीकाकार की निरुक्ति है -

यजतेर्यावदर्थः यज्ञ के समान यजन किया जाता है, अथवा इष्टयते हि सः - वह कामना करने योग्य है।

१. १० देवताता -

ऋग्वेद के अग्निसूक्त में स्पष्टतः देवताता शब्द से यज्ञ लक्षित होता है -

आ देवताता हविषा विवासति ॥³²

³¹ ऋक् - १०.९८.७

³² ऋक्. - १.७८.१

क. आचार्य सायण के धातु-प्रत्यय पूर्वक चिन्तन द्वारा पाणिनी सूत्र 'सर्व देवात्तातिल्' इति 'स्वार्थिकः' से देवताता शब्द सिद्ध होता है। देवताता इति यज्ञनाम - देवताता, यह यज्ञ का नाम है क्योंकि यज्ञ में चरुपुरोडाश आदि आहुति से देवों की सेवा की जाती है ॥

ख. देवेन तता देवताता -

देवताओं द्वारा विस्तारित यज्ञ देवताता है।

ग. देवनशीलेनातिना विस्तारिता दीप्तिः -

देवनशील अग्नि के द्वारा विस्तारित प्रकाश देवताता है।

घ. विस्तारयुक्तं यागाय - देवों के विस्तारयुक्त यज्ञ के लिये यजमान, अग्नि की सेवा करते हैं, उसे देवताता कहते हैं।

ड. दीव्यन्ति स्तुवन्त्यत्र देवताः -³³ जहां देवताओं की स्तुति की जाती है, वह यज्ञ, देवताता है।

१. ११ मख -

तैत्तरीय संहिता एवं अन्य संहिताओं में यज्ञ को मख कहा है।³⁴

क. यज्ञो वै मखः³⁵ यज्ञ ही मखस्वरूप है।

ख. मख इति एतद्यज्ञनामधेयम्, छिद्रप्रतिषेधसामर्थ्यात् छिद्रं खमित्युक्तं तस्य मेति प्रतिषेधः। मा यज्ञं छिद्रं करिष्यतीति ॥³⁶

³³ निघण्टु - ३.१७.१०

³⁴ मैत्रा. सं.-३.१.७, काठ. सं.- ३१.७

³⁵ तै. सं.- ३.२.४.१,

मख, यह यज्ञ का नाम है क्योंकि मख, दोषनिवारक है अथवा छिद्ररहित (निर्दोष) है। छिद्र को खम् कहते हैं उसका प्रतिषेध मा कहलाता है। यज्ञ को दूषित नहीं किया जाना चाहिये।

ग. अमरकोश के व्याख्याकार ने मख गतो धातु से बने मख शब्द का निरुक्ति की है

मखन्ति देवा अत्र अनेन वा।

देवता जहां जाते हैं। अथवा जिससे गतिशील होते हैं, वह मख, यज्ञ है।

१. १२ विष्णु -

क. संहिता तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञ को विष्णु कहा गया है।

यज्ञो विष्णुः,³⁷ विष्णुर्यज्ञः³⁸ यज्ञो वै विष्णुः ॥³⁹

(शत ब्रा - १.९.३.९, गोपथ ब्रा.- १.६.७, ताण्ड्य महा ब्रा.- १३.३.२)

ख. विशेषेणाप्नोति स्वर्गम् - जिसके द्वारा सुख विशेष की प्राप्ति हो, वह यज्ञ, विष्णु है।"

१. १३ इन्दु -

भाषा भाष्यकार ने इन्दु शब्द का अर्थ- जलक्रियामय यज्ञ किया है।⁴⁰ उन्दी क्लेदने, धातु से निर्मित इन्दु शब्द का व्युत्पत्ति पूर्वक अर्थ है - क्लिद्यते सूयतेऽस्मिन् सोमः⁴¹ - जिसमें सोम टपकाया जाता है। वह यज्ञ, इन्दु है।

³⁶ गो. ब्रा. - २.२.५

³⁷ मैत्रा.सं.-१.६.८,

³⁸ तै.सं.- २.३.१ १.२

³⁹ ऐत.ब्रा.-१, १७

१. १४ प्रजापति -

अनेकार्थवाचक शब्द प्रजापति का नाम यज्ञ भी है । संहिता एवं ब्राह्मणग्रन्थों में इनका उल्लेख है

क. यज्ञ उ वै प्रजापतिः।⁴²

ख. यज्ञो वै प्रजापतिः।⁴³

ग. एष वै प्रत्यक्षं यज्ञो यत्प्रजापतिः।⁴⁴

वह यज्ञ ही प्रजापति है ।

१. १५ धर्म -

काठक संहिता में अग्निहोत्र को धर्म कहा गया है -

क. धर्मो व एष प्रवृज्यते यदग्निहोत्रम्।⁴⁵

ख. धर्म शब्द का अर्थ आचार्य सायण ने किया है।

क्रव्यादात्परोऽग्निः उत्कृष्टे सहस्थाने यज्ञ प्राप्नोतु ⁴⁶ मृत शरीर को जलानेवाली क्रव्याद-अग्नि से भिन्न, गृह में स्थापित अग्नि, विस्तृत यज्ञ गृह में यज्ञ को प्राप्त करे।

⁴⁰ ऋक् - १.२.४

⁴¹ निघण्टु - ३. १७.१२, १३

⁴² तै. सं. - ३.२.३.३, काठ. सं.- २२.१

⁴³ मैत्रा. सं.- ३.९.६

⁴⁴ मैत्रा.सं.-३.९.६

⁴⁵ काठ.सं-६.३

ग. क्षरत्यस्मिन् सोमः दीप्यतेऽत्रालायः वा -⁴⁷ जिसमें सोम की आहुति दी जाती है अथवा जहां अग्नियां प्रज्वलित होती हैं, वह यज्ञ धर्म है।

१.२ अमर कोश में उल्लेखित यज्ञ-

ये, सवः, यागः, सप्ततन्तु तथा क्रतु चार प्रकार के हैं इनका विवेचन इस प्रकार है -

- सवः - सूयते सोमोऽत्र - जहां सोम की आहुति दी जाती है, वह सवः है।
- यागः - इज्यते अनेन वा यत्र वा - जहां या जिससे पूजन कर्म हो वह याग है।
- सप्ततन्तुः - सप्तभिश्छन्दोभिरनिर्जिवाभिर्वा तन्यते, यद्वा तानि सप्त तन्यतेऽत्र - सात छन्दों के द्वारा अथवा अग्नि की सात ज्वालाओं के द्वारा विस्तारित यज्ञ, सप्ततन्तु है या जहां वे सातों विस्तृत हों ॥
- क्रतुः - 'करोति क्रियते वा' जो किया या कराया जाता है। वह यज्ञ क्रतु है।

जिस प्रकार यजन के द्वारा देवत्व को प्राप्त किया, उसी तरह नर-पशु में ब्राह्मणत्व का उदय यज्ञ कार्य से ही होता है। ब्राह्मण के छः कर्मों में एक तिहाई योजना यज्ञ करने और कराने की है। इन प्रतिपादनों में परोक्ष रूप से पवित्रता के उन तत्त्वों की गरिमा बताई गई है, जो यज्ञ कृत्य के प्राण और विश्व शांति के आधार हैं। व्यक्ति और समाज का, प्रकृति और सृष्टि का चक्र यज्ञ की धुरी पर ही परिभ्रमण कर रहा है। उदार सहयोग का योग-दर्शन ही सर्वत्र सजीवता, सुव्यवस्था, प्रगतिशीलता और सुख-शान्ति की

⁴⁶ ऋक्-१०.१६.१०

⁴⁷ निघण्टु- ३.१७.७

परिस्थितियां बनाता चलता है। जल-चक्र स्पष्ट है कि समुद्र से बादलों को, बादलों से धरती को, धरती से नदियों को, नदियों से समुद्र को मिलता है। इस जल-चक्र में व्यवधान पड़े तो धरती अग्नि-पुंज की तरह जलने लग जाएगी। प्राणी-चक्र में वनस्पति को प्राणी खाते हैं, प्राणियों के मल-मूत्रादि से वनस्पतियों का पोषण होता है, दोनों अन्योन्याश्रित हैं। पेड़ों से छोड़ी गई ऑक्सीजन प्राणियों का आहार है और प्राणियों से उत्सर्जित कार्बनडाई-ऑक्साईड पर पेड़ों का जीवन निर्भर है। पशु और मनुष्यों के बीच भी ऐसा ही उदार सहयोग है, इसी यज्ञ-प्रवृत्ति के साथ विश्व चक्र घूमता है। इसकी उपेक्षा से पर्यावरणीय संकट उपस्थित होते हैं और इन सत्प्रवृत्तियों को अपनाने पर सभी आत्मिक, सामाजिक और भौतिक समस्याओं का समाधान स्वयमेव निकल आता है। सम्पूर्ण सृष्टि के क्रिया-कलाप 'यज्ञ' रूपी धुरी के चारों ओर ही चल रहे हैं, तभी तो भगवती श्रुति प्रेरणा करती हैं

अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।⁴⁸

यह यज्ञ ही सम्पूर्ण सृष्टि का आधार है। यह भारतीय मनीषियों के द्वारा प्रदान की गई ऐसी महत्वपूर्ण देन है, जिसे सर्वाधिक फलदायी एवं समग्र पर्यावरण केन्द्र (इको सिस्टम) के ठीक बने रहने का आधार माना जा सकता है। यज्ञ हमारी संस्कृति का आधार इष्ट रहा है तथा यज्ञ के बिना हमारे किसी क्रिया कलाप की कल्पना भी नहीं की जा सकती। प्राकृतिक प्रकोपों, आपत्तियों तथा प्रदूषण से बचने का वैज्ञानिक आधार यज्ञ है।

१.३ स्मार्तयज्ञों की अवधारणा -

⁴⁸ यजु.- २३.६२, अथर्व.-९.१५.१४

श्रौत यज्ञों में हिंसा की प्रधानता को देखकर लोगों ने हिंसा रहित स्मार्त यज्ञ करना प्रारम्भ कर दिया। स्मार्त यज्ञों में वैदिकता के अतिरिक्त पौराणिक प्रभाव अधिक है। पद्म पुराण में श्रौत यज्ञों की बड़ी निन्दा किया है कि पशुओं को मारकर यज्ञ करने से यदि स्वर्ग की प्राप्ति होती है, तो नरक में कौन जाता है। अतः यज्ञ में पशु (बध) हिंसा निन्दनीय है।⁴⁹ अतः उत्तर वैदिक काल से श्रौत यज्ञों की अपेक्षा स्मार्त यज्ञों को अधिक महत्व दिया गया है। स्मार्त यज्ञों की संख्या इस समय काफी बढ़ गई है। किन्तु प्रधान प्रचलित यज्ञ इस प्रकार है- रुद्रयज्ञ, विष्णुयज्ञ, गणेश यज्ञ, रामयज्ञ, ब्रह्मयज्ञ, सूर्ययज्ञ, शक्तियज्ञ, लक्ष्मीयज्ञ, शतचण्डीयज्ञ, भागवत् सप्ताहयज्ञ, कोटि होम आदि प्रचलित है। पञ्च महायागों का भी स्मार्त यज्ञों के रूप में गृहण करते हैं। गौतम धर्मसूत्र में पाक संस्थान्तर्गत स्मार्तयज्ञों की संख्या सात बताई गई है- औपासन होम, वैश्व देव, पार्वण, अष्टका, मासिकश्चाद्ध, श्रावणी, शूलगव। इन यज्ञों के लिए निष्काम भाव की आवश्यकता बतलायी गयी है। इन यज्ञों से देवता तृप्त होते हैं और यज्ञ करने वाले यजमान को भी तृप्त करते हैं।⁵⁰ विवाह के अनन्तर विधि पूर्वक अग्नि का स्थापन करके जिस अग्नि में सायं और प्रातः नित्य हवनादि कृत्य किये जाते हैं, उसे स्मार्ताग्नि, आवसथ्याग्नि अथवा औपवश्याग्नि कहते हैं। इस स्मार्त अग्नि में किये जानेवाले कर्मों को स्मार्त-कर्म कहते हैं। अतः प्रत्येक गृहस्थ मनुष्य को स्मार्त अग्नि में पका भोजन करना चाहिए।

➤ गृह्य अग्नि का आधान काल -

गृह्य आवसथ्य और औपासन- ये सब स्मार्त अग्नि के नाम हैं। इसका आधान विवाह के समय या दायाद्य काल में किया जाता है। यदि दोनों ही समय में आधान का सम्पादन न हो तो जितना समय व्यतीत हो जाता है। इसका शास्त्रोक्त विधि से प्रायश्चित्त करके आधान का विधान

⁴⁹ यज्ञकृत्वा पशुहत्वा कृत्वा रूधिर कर्दनम् । यद्येव गम्यते स्वर्गो नरकः केन गम्यते॥ पद्मपुराण- १३.३२३

⁵⁰ देवाभावयतानेन ते देवा भावयन्तुवः। भ.गी.- ३.११

बताया गया है। इस प्रकार आहिताग्नि में औपासनादि सप्त पाक यज्ञों का अनुष्ठान किया जाता है।

१.४ स्मार्त पाक यज्ञों के प्रकार -

१. औपासन होम-

दधि, तण्डुल या अक्षतों के द्वारा हाथ से किया जाने वाला होम औपासन-होम कहलाता है। इसमें सायंकाल का प्रधान देवता अग्नि होता है और स्विष्टकृतस्थानीय अङ्ग देवता प्रजापति माना जाता है। इसी तरह प्रातःकाल में सूर्य प्रधान देवता होता है और प्रजापति अङ्ग देवता। यह कर्म सायंकाल शुरू किया जाता है और प्रातःकाल समाप्त हो जाता है तथा दोनों मिलकर एक कर्म कहलाता है। यह यज्ञ सपत्नीक को आजीवन करना चाहिए।

२. वैश्वदेव-

इसी वैश्वदेव पाक यज्ञ का दूसरा नाम पञ्चमहायज्ञ भी है। प्रत्येक गृहस्थ को इसका नित्य अनुष्ठान करना चाहिए। इसके विषय में श्रुति-स्मृति सब का यही कथन है कि “पञ्चैव महायज्ञा; तान्येव महासत्राणि भूतयज्ञो, मनुष्ययज्ञः, पितृयज्ञो देवयज्ञो. ब्रह्मयज्ञः इति”⁵¹। अतः वैश्वदेव के पाँच भेद होते हैं- ब्रह्मयज्ञ, भूतयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ, मनुष्ययज्ञ। अतः मनुस्मृति में पञ्चमहायज्ञों का विवेचन किया गया है।

अध्यापनं ब्रह्म यज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् ।

होमो दैवो बलिभृतो नृयज्ञोऽतिथि पूजनमम् ।

⁵¹ शत. ब्रा. ११.३.८

पञ्च क्लृप्ता महा यज्ञाः प्रत्यहं हि द्विजात्मनः।⁵²

अतः पढ़ना-पढ़ाना ब्रह्म यज्ञ है। पितरों को तर्पण आदि श्राद्ध कर्म करना पितृ यज्ञ हवन से देवयज्ञ होता है। प्राणियों को भोजनादि अर्पण करना भूत यज्ञ है। अतिथिपूजन से मनुष्य यज्ञ सम्पन्न होता है।⁵³ जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में वर्णित है।⁵⁴ “स्वाध्यायो वै ब्रह्मयज्ञः। अहरहर्भूतेभ्यो बलिं हरेत्, तथैयतम् भूतयज्ञं समाप्नोति अहरहर्दद्यादोदपात्रात्तथैतं मनुष्य यज्ञं समाप्नोति। अहरहः स्वधा कुर्यादोद पात्रात्तथैतं पितृ यज्ञं समाप्नोति। अहरहः स्वाहा कुर्यादाकाष्ठात् यैतं देवयज्ञं समाप्नोति” ब्राह्मणों के लिए प्रतिदिन इन पञ्चमहायज्ञों का विधान कहा गया है। अतः मनुष्य को प्रतिदिन पञ्चमहायज्ञ करना चाहिए।

३. पार्वण-

पर्व-पर्व पर या पितरों के निधन पर और प्रत्येक मास पर होने वाले श्राद्ध को पार्वण कहते हैं। यह यज्ञ प्रत्येक अमावस्या या पूर्णिमा के दिन गृहस्थ के द्वारा अनुष्ठित किया जाता है।

४. अष्टका श्राद्ध-

कार्तिक, मार्गशीर्ष, पौष तथा माघ-इन चार मासों के कृष्ण पक्ष की अष्टमी तिथियाँ अष्टका कही जाती हैं। अष्टका श्राद्ध मार्गशीर्ष, पौष और माघ-इन तीनों मासों की कृष्ण पक्ष की अष्टमी पर ही सम्पन्न किया जाता है। इनमें पितरों का श्राद्ध करने का विशेष महत्व है। इसमें स्थालीपाक, आज्याहुति पूर्वक पितरों के श्राद्ध किये जाते हैं। इसमें इन्द्र विश्वदेव प्रजापति और पितरों

⁵² मनु. - ३.७०

⁵³ अध्यापनं ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्। होमो दैवो बलिर्ऋतो वृयज्ञोऽतिथि पूजनम् ॥ कलिका पुराण-३२.१६

⁵⁴ शत. ब्रा. - ११.८.३

के उद्देश्य से कर्म किये जाते हैं। अतः प्रत्येक मनुष्य को इन्द्र, प्रजापति, विश्वदेव और पितरों की प्रसन्नता के लिए अष्टका श्राद्ध करना चाहिए।

५. मासिक श्राद्ध-

गृहस्थ को यह कर्म प्रत्येक मास में सम्पादित करना चाहिए। इसमें इन्द्र, विश्वदेव, प्रजापति और पितरों के प्रसन्नता के लिए यह कर्म किया जाता है। यह एक मासिक श्राद्ध है। इसका अनुष्ठान प्रत्येक मास में किया जाता है।

६. श्रावणी-कर्म (सर्पबलि) -

श्रावणी पूर्णिमा से शुरू करके मार्गशीर्ष की पूर्णिमा तक प्रतिदिन सायं काल में सर्पों के निमित्त क्रियमाण बलि कर्म को श्रावणी कर्म कहते हैं। यह श्रावणी पूर्णिमा से प्रारम्भ करके मार्गशीर्ष पूर्णिमा को सम्पन्न किया जाता है। इसमें सर्प बलि, गृह्यकर्म और वैदिक क्रियाएँ (उपाकर्म) और रक्षा-बन्धन आदि क्रियाएँ की जाती हैं। इसमें आज्याहुति और स्विष्टकृत् हवन एवं भूशयन आदि कर्म किये जाते हैं।

७. शूलगव-

जिसमें गो-द्रव्य पदार्थों का प्रयोग किया जाता है, उसे शूलगव यज्ञ कहते हैं। इसका अनुष्ठान जीवन में एक ही बार किया जाता है। यह चैत्र शूलगव कर्म (वृषोत्सर्ग) किया जाता है। पारस्कर गृह्यसूत्र के तृतीय काण्ड की आठवीं काण्डिका में वर्णित है कि शूलगव यज्ञ स्वर्ग, पुत्र धन, पशु यश एवं आयु प्रदान करने वाला है।⁵⁵ इसमें पशु पति रुद्र के लिए वृषभ (साँड़) छोड़े

⁵⁵ पा. गृ. -३.८

जाने का आदेश है। इस दिन स्थाली पाक पूर्वक विधिवत् हवन भी किया जाता है। किन्तु गो-द्रव्य कर्म का निषेध होने से आधुनिक समय में इसका अनुष्ठान नहीं किया जाता है।

८. आश्वयुजी कर्म-

यह आश्वयुजी कर्म है। इसका विस्तार से वर्णन पारस्कर गृह्यसूत्र के द्वितीय काण्डकी सोलहवीं काण्डिका में मिलता है।⁵⁶ इसका पूरा नाम पृषातक यज्ञ है। इसमें ऐन्द्रिय हविष्य का दधि-मधु से सम्मिश्रण कर इन्द्र, इन्द्राणी तथा अश्विनीकुमारों के नाम से आश्विन-पूर्णिमा को हवन किया जाता है। उस दिन गायों और बछड़ों को विशेष रूप से एक साथ ही रखा जाता है। ब्राह्मणों को भोजन करा देने के उपरान्त इस कर्म की समाप्ति होती है।

इस प्रकार से स्मार्त यज्ञों का प्रचलन इस समय बढ़ गया है क्योंकि यह सरल एवं हिंसा रहित यज्ञ है। इसमें पौराणिक प्रभाव अधिक दिखाई देता है। अतः समस्त यज्ञों को निष्काम भाव से सम्पन्न करना चाहिए। इन यज्ञों से देवता और यजमान भी तृप्त होते हैं,⁵⁷ क्योंकि यज्ञ से देवता लोग पुष्ट होकर अनेक उत्तम भोगों को प्रदान करते हैं। अतः मनुष्य यज्ञ और यज्ञ रूप परमात्मा का यजन करने से मन वाणी और विवेक की वृद्धि होती है।⁵⁸ यज्ञ सब ऐश्वर्यों को प्रदान करने वाला है, इसलिये हमें महिमामयि यज्ञ को सर्वदा करना चाहिये भूलकर भी कभी इसका त्याग नहीं करना चाहिए।

१.५ प्रकारान्तर से स्मार्त यज्ञों का पुनः विश्लेषण -

१. पाकयज्ञ -

⁵⁶ पा. गृ.- २.१६

⁵⁷ देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तुवः। भ.गी. - ३/११

⁵⁸ शुक्लयजु.- ३०.१

वस्तुतः जिस कृत्य में ओदनादि 'चरु' 'पुरोडाश' पकाया जाता है, उसकी पाकसंज्ञा है और उक्त कर्म जिस अग्नि में किया जाता है वही पाकाग्नि है। गृहस्थ से सम्बद्ध सभी कृत्य गृह्याग्नि में सम्पादित किए जाते हैं। वे समस्त कृत्य गृह्याग्नि में सम्पाद्यमान हैं, उन्हें 'पाकयज्ञ' कहा जाता है।⁵⁹ नित्यप्रति गृह्याग्नि में सम्पाद्यमान कृत्य पाक यज्ञ चतुर्धा विभाजित है- हुत, अहुत, प्रहुत तथा प्राशित।⁶⁰

- हुत(देवयज्ञ-अग्निहोत्र) प्रातःसायं होममात्र – हुत नामक पाकयज्ञ का परिचायक है।
- अहुत(पितृयज्ञ- सहस्रारोहण) होम बलि रहित कृत्य- अहुत नामक पाक यज्ञ है।
- प्रहुत(भूतयज्ञ-बलिवैश्वदेव-पक्षादिकर्म) पहले होम तत्पश्चात् बलिकर्म- प्रहुत पाक यज्ञ कहलाता है।
- प्राशित(अतिथियज्ञ-मनुष्य यज्ञ)जिसमें प्राशनमात्र अभीष्ट है अर्थात् ब्राह्मणभोजन प्राशित नामक पाक यज्ञ कहलाता है।

‘हुत’ आदि के विषय में प्रकृत गृह्यसूत्र का अधोलिखित अंश उल्लेखनीय हैं⁶¹

“त एते अप्रयाजा अननुयाजा अनिळा अनिगदा असामिधेनीकाश्च सर्वे पाकयज्ञा भवन्ति” तदपि श्लोकाः -

हुतोऽग्निहोत्रहोमेन अहुतो बलिकर्मणा।

प्रहुतः पितृकर्मणा प्राशितो ब्राह्मणे हुतः ।

⁵⁹ पाके यज्ञाः पाकयज्ञाः। पा.गृ. सूत्र हरिहर भाष्य

⁶⁰ चत्वारः पाकयज्ञाः । हुतोऽहुतः प्रहुतः प्राशित इति । कौषी. गृ.- १.१.२३

⁶¹ वही- १.६.५७.

अनूर्ध्वजज्ञुव्यूळहजानुः जुहुयात् सर्वदा हविः ॥

न हि बाह्यहुतं देवा प्रतिगृहन्ति कर्हिचित् ॥

रौद्रं च राक्षसं पित्र्यमासुरं चाभिचारिकम् ।

उक्त्वा मन्त्रं स्पृशेदाप आलभ्यात्मानमेव च ॥

पाक यज्ञों के चार प्रकार के होने की पुष्टि अन्य गृहसूत्रों में भी होती है।⁶² कतिपय गृहसूत्रों में इस परिगणना के सन्दर्भ में मत-मतान्तर भी हैं।⁶³

ब्राह्मण ग्रन्थों में पञ्चमहायज्ञों का उल्लेख हुआ है।⁶⁴ इन पञ्चमहायज्ञों में से ब्रह्मयज्ञ को छोड़ कर अन्य चार देवयज्ञ, पितृयज्ञ, भूतयज्ञ एवं अतिथियज्ञ का अन्तर्भाव इन्हीं हुतादि चार प्रकार के पाकयज्ञों में हो जाता है।

आपस्तम्ब गृहसूत्रकार ने श्रौतारिक्त स्मार्त अथवा लौकिक जीवन से सम्बद्ध कृत्यों के लिए (विवाह आदि) पाकयज्ञ शब्द को ग्रहण किया है।⁶⁵ वास्तव में पाकयज्ञ श्रौतयज्ञों की अपेक्षा अल्प अथवा छोटे होते हैं। इस दृष्टिकोण से वाराह गृहसूत्रकार का मन्तव्य समीचीन प्रतीत होता है

ह्रस्वत्वात्पाकयज्ञः ह्रस्व गुं हि पाक इत्याचक्षते ।⁶⁶

⁶² क. शां. गृ. १.५.१ ख. पा. गृ.- १.४.१

⁶³ क. त्रयः पाकयज्ञाः । आ. गृ.- २.१.१ ३.

ख. यथो एतद्भुत प्रहुत आहुतश्शूलगी बलिहरणं प्रत्यारोहणमष्टका होम इति.
पाकयज्ञ संस्था इति। बौ.गृ.- १.१-२ तथा १.८

⁶⁴ शत. ब्रा.- ११.५.६.१

⁶⁵ लौकिकानां पाकयज्ञशब्दः । आप. गृ.- १.२.९

⁶⁶ वा. गृ.- १.३

अर्थात् ह्रस्वत्व के कारण ये पाक यज्ञ कहलाते हैं। उक्त सूत्र में 'पाक' शब्द 'अल्प' अर्थ का द्योतक है। अतः पाकयज्ञों में प्रयुज्य भौतिक संसाधनों समय एवं द्रव्य के दृष्टिकोण से अल्प होने पर समाज में यज्ञों की महत्वपूर्ण प्रतिष्ठा है।

२.शालाग्नि-

मानव जीवन से सम्बद्ध समस्त श्रौत एवं स्मार्त यज्ञों का सम्पादन अग्नि में होता है। अग्नि की सृष्टि समस्त प्राणियों की सृष्टि से पहले हुई थी। इस सन्दर्भ में तैत्तिरीय ब्राह्मण में उल्लिखित है कि प्रजापति ने सर्वप्रथम अग्नि की उत्पत्ति की थी⁶⁷ गौतम बुद्ध के मतानुसार यह सबसे अग्रणी होने के कारण पुराण वेत्ता मनीषियों द्वारा अग्नि शब्द से परिभाषित हुई।⁶⁸

प्रयोग की दृष्टि से अग्नि के तीन भेद हैं लौकिकाग्नि स्मार्ताग्नि (वैतानिकाग्नि) श्रौताग्नि।⁶⁹ प्रतिदिन व्यवहारिक जीवन में समस्त लोग जिस अग्नि का प्रयोग करते हैं उसे लौकिकाग्नि कहते हैं। प्रायः जिस अग्नि में समस्त गृह कृत्यों को संपन्न किया जाता है उसे स्मार्ताग्नि कहते हैं इसके विविध नाम हैं गृह्य गृह्यपति शालाग्नि औपासन तथा आवसथ्य ।⁷⁰ जिनमें शालाग्नि भी एक है जिसका उल्लेख गृह्यसूत्रों में हुआ है।⁷¹ पाण्डुरङ्ग वामन काणे ने पांच अग्नियों का उल्लेख किया है।⁷²

⁶⁷ प्रजापतिरग्निमसृजत् । तै.ब्रा.- ११८

⁶⁸ यस्मादसे स भूतानां सर्वेषा निर्मितो मया।

तत्मादग्नीत्यभिहितं पुराणज्ञैर्महर्षिभिः ॥ जीवानन्द, पृ० ६०२

⁶⁹ सं. सा. वृ. इति ;बलदेव उपाध्याय, पृ.- २२२

⁷⁰ अवसथ्याधानं दारकाले दायाद्यदकाल एकेषाम् । पा. गृ.- १.२

⁷¹ क. कौषी. गृ.- १.१

ख. शां. गृ.- १५

ग. पा. गृ.- १.४.१

⁷² ध. शा. इति, भाग-१, पृ.- ३६४

शालाग्नि दो शब्दों के समन्वय का परिचायक है। जिसमें शाला का अर्थ गृह्य तथा यज्ञवेदि होता है। यहाँ शाला से अभिप्राय यज्ञवेदि ही ग्रहण किया गया है। यज्ञ वेदि में जिस अग्नि का उपयोग किया जाता है, उसे शालाग्नि कहते हैं।

पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार पाँच संस्कार कर्मों का सम्पादन घर से बाहर खुले में व्यवस्थित यज्ञवेदि में करना चाहिए।⁷³ प्रकृत गृह्यसूत्र में इन पांच कृत्यों में परिगणित हैं- विवाह, चूड़ाकरण, उपनयन, केशान्त तथा सीमन्तोन्नयन (मुंडन)।⁷⁴ अन्य गृह्यसूत्रों में भी यह परिगणना यथावत् है।⁷⁵ भूमि को खुरचकर सर्वप्रथम साफ करके मण्डपान्तर्गत भूमि का उपलेपन करके अग्नि स्थापन करके उक्त संस्कार कर्म करने चाहिए।⁷⁶ इस विषय में कुछ आचार्यों का यह भी मानना है कि अरणिमन्थनोत्पन्न अग्नि में विवाह संस्कारसम्पन्न किया जाना चाहिए।⁷⁷

३. आग्रयणकर्म-

आग्रयणकर्म नव अन्न के घर में आने पर किया जाता है। गोभिल तथा मनुस्मृति में इसे नव यज्ञ एवं नवस्येष्टि कहा है।⁷⁸ अधिकांश सूत्रों में इस कृत्य का उल्लेख हुआ है।⁷⁹ तैत्तिरीय संहिता में भी नवान्न से देवताओं के यजन का विधान है।⁸⁰ कौषीतक ब्राह्मण में आग्रयणकर्म

⁷³ पञ्चसु संस्कारकर्मसु बहिःशालायां गृहाद्वहिःशाला बहिःशालामण्डप इति यावत् ॥

पा. गृ.- १.४.२ पर हरिहर भाष्य

⁷⁴ कौषी. गृ.- ११-४.५

⁷⁵ शां. गृ.- १.५.२

⁷⁶ कौषी गृ.- १.१६

⁷⁷ निर्मन्थ्यमेके विवाहे। वही १.१.७

⁷⁸ क. गो. स्मृ.- ३.१०३ ख. मनु.- ४.२७

⁷⁹ क. कौषी. गृ. ३.५ ख. शां. गृ.- ३.८ ग. आ. गृ.- २.२.४.५

घ. पा. गृ.- ३.१ ङ. गो. गृ.- ३.८-९.२४ च. मा. गृ.- २.३-९.१४

⁸⁰ तैत्ति. सं.- ५.६.२

श्यामाक, जौ एवं वेणुयव से यजन करने की विधि उल्लिखित है।⁸¹ इस कृत्य के सन्दर्भ में आपस्तम्ब गृह्यसूत्र की टीका में सुदर्शन लिखते हैं कि-

येन कर्मणा अग्रं नवद्रव्यं देवान्प्रायतीति यत्कर्मकृत्वैव वाग्रयणं प्रथमायनं

नवान्नप्राशनप्राप्तिर्भवतीति ।⁸²

अर्थात् यह वह कृत्य है जिसमें नवान्न या उपज सबसे पहले देवों को अर्पित किए जाते हैं अथवा जिसमें नवान्न फलादि सबसे पहले देवताओं को अर्पित करके प्राशन किया जाता है। वास्तव में यह कृत्य श्रौतकर्म है। गृह्यसूत्रों में इसका विधान मुख्य रूप से अनाहिताग्नि के लिए किया गया है।⁸³ जबकि आश्वलायन गृह्यसूत्र में इसका विधान अनाहिताग्नि तथा आहिताग्नि दोनों अग्रियों के लिए किया गया है।⁸⁴ अतः इससे प्रतीत होता है कि यह कृत्य श्रौत और स्मार्त दोनों ही कृत्यों की श्रृंखला में है।

यजमान उक्त कृत्य में नवान्न से स्थालीपाक तैयार करता है तथा उस अन्न से आग्रयण इन्द्राग्नि देवताओं, विश्वेदेवा तथा द्यावापृथिवी को स्थालीपाक प्रदान करके तत्पश्चात् गृह्याग्नि में अग्नि स्विष्टकृत आहुति प्रदान करता है।⁸⁵ होम विधि एवं मन्त्र-

इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा, इदं इन्द्राग्नीभ्यां इदन्न मम ।

विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा, इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः इदन्न मम।

⁸¹ कौषी. ब्रा.-४१.२

⁸² आप.गृ.- १९.६

⁸³ क. कौषी. गृ. ३.५.१ ख.शा. गृ.- ३.८.१ ग. पा. गृ.- ३.११

⁸⁴ आ. गृ.- २.२.४-५

⁸⁵ कौषी. गृ. ३.५.१

द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा, इदं द्यावापृथिवीभ्यां इदन्न मम॥

आग्रयण के तीनों देवों की आहुतियों के अनन्तर शेष बचे अन्न का अधोलिखित मन्त्र का पाठ करते हुए गृहस्थी को ग्रहण करना चाहिए।⁸⁶ “प्रजापतये त्वा ग्रहं गृह्णामि मह्यं श्रियै मह्यं यशसे मह्यमन्नाद्याय” शाखायनगृह्यसूत्र में इसी मन्त्र से होम से अवशेष प्राशनार्थीय अन्न का अभिमन्त्रण कहा है।⁸⁷ तत्पश्चात् मन्त्र सहित नवान्न का प्राशन भक्षण किया जाता है कौषीतक गृह्यसूत्र के अनुसार संयम अन्न का जल से अभ्युक्षण करके निम्न मन्त्र का उच्चारण करते हुए तीन बार प्राप्त करना चाहिए⁸⁸ स्वल्प पाठ भेद के साथ अन्य गृह्यसूत्रों में भी इस मंत्र का प्रयोग नवान्नप्राशनार्थ ही हुआ है।⁸⁹ ऋग्वेदीय कौषीतक एवं शांखायन गृह्यसूत्र में नवान्नप्राशन के पहचान हृदयदेश के स्पर्श के लिए अधोलिखित मन्त्र का निर्देश है⁹⁰:-

ॐ अमोऽसि प्राण तदृतं ब्रवीम्यमोऽसि सर्वाण्यनु प्रविष्टः ॥

समे जरां रोगपनुद्य शरीररादमा म एधि मामृधाम इन्द्र ॥

अर्थात् इस मन्त्र में इस प्रकार की अभिव्यक्ति की गई है कि - हे प्राण, तू ही अन्न में है सत्य कहता हूँ अन्न के साथ ही सभी में प्रविष्ट हो जाऊँ एवं मेरे शरीर में बुढ़ापे और रोग को दूर करके रोगशून्य हो जाओ। हे सब प्राणियों के ईश्वर, तूँ हमारे लिए कल्याणकारी हो अर्थात् हमारे लिए कदापि अनिष्टकारी न होना। ऋग्वेदीय गृह्यसूत्र में जहाँ ‘अमोऽसि’ इस मन्त्र का

⁸⁶ वही-३.५.१

⁸⁷ शां. गृ.- ३.८.२

⁸⁸ कौषी० गृ० ३.५.१

⁸⁹ क. शां. गृ.- ३.८.३ ख. गो. गृ.- ३.८.१६ ग. पा. गृ.- ३.१.४

घ. खा. गृ.- ३.३.१३ ड. अग्नि. गृ.- १.७.४ च. कौ. गृ.- ७४. १९

⁹⁰ क. कौषी. गृ.- ३.५.२ ख. शां. गृ.- ३.८.४

विनियोग नवान्न प्राशन के अनन्त हृदय स्पर्श के लिए हुआ है वहीं गोभिलगृह्यसूत्र तथा खादिरगृह्यसूत्र में नवान्न प्राशन के पश्चात् ही ऊपर से नीचे की ओर सिरमुख तथा अन्य अंगों का स्पर्श करते हुए वह मन्त्र उच्चारण किए जाने का आदेश है।⁹¹ आग्रयण के अन्तर्गत ही कौशिक गृह्यसूत्र के अनुसार नवान्न प्राशनानन्तर इस मन्त्र द्वारा अन्न का अभिमन्त्रण कहा गया है।⁹²

नवान्न प्राशनानन्तर हृदय आदि के स्पर्श की भांति ही प्रकृत गृह्यसूत्र में नाभि स्पर्श के लिए भी संकेत किया है।⁹³ नाभि स्पर्श करते हुए 'प्राणानां ग्रन्थि रसि मा विस्रस' मन्त्र का किया जाता है। नाभि वास्तव में सभी प्राणों अर्थात् इन्द्रियों का केन्द्र उच्चारण मानी जाती है, इसलिए समस्त इन्द्रियों का शरीर के अनुकूल बने रहने के लिए वैदिक कल्याणकारी मन्त्रोच्चारण सार्थक प्रतीत होता है।

इसके पश्चात् 'भद्रं कर्णेभिः' मन्त्र उच्चारण से रहस्योदघाटन किया गया है।⁹⁴ जिसमें निर्देशित इन्द्रियों के चिर स्थायी बने रहने के साथ-साथ दीर्घजीवी होने की कामना प्रतीत होती है। अन्त में ऋग्वेदीय गृह्यसूत्रों कौषीतक⁹⁵ एवं शांखायन⁹⁶ द्वारा सूर्योपासन के लिए विख्यात मन्त्र "तच्चक्षुके पाठ का उल्लेख है। इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए यजमान सूर्य के सदृश अनुशासनात्मक जीवनयापन एवं दीर्घ जीवी होने की प्रार्थना करता है।

⁹¹ क. गो. गृ.- ३.८.२१ ख. खा. गृ.- ३.३.१५

⁹² कौ. गृ.- ७४.२०

⁹³ कौषी. गृ.- ३.५.२

⁹⁴ वही- ३.५.३

⁹⁵ वही. - ३.५.३

⁹⁶ शां. गृ.- ३.८.७

➤ गोष्ठकर्म-

आग्रयण कर्म के अन्तर्गत ही गौओं के गोचर भूमि की ओर जाने के सुअवसर पर उनकी सब प्रकार से कल्याण एवं सुरक्षा की अभिलाषा की जाती है। इस सन्दर्भ में कौषीतकगृह्यसूत्र विविध प्रकार के अनिष्टों के उपशमनार्थ 'परि वपस्वेदं वृञ्जन्तु घोषिण्यस्यस्स मा स्वस्थ गोपते मा वो रक्षो मनो रिषत्'⁹⁷ मन्त्र का पाठ किए जाने का विधान है। यह मन्त्र ऋग्वेदीय संहिता एवं अन्य संहिताओं में उपलब्ध नहीं है तथा ऋग्वेदीय गृह्यसूत्रों कौषीतक एवं शांखायन दोनों में इसका उल्लेख हुआ है। वहाँ भी अन्तर इतना है कि प्रकृत गृह्यसूत्र में यह विधि आग्रयण कर्म के अन्तर्गत ही है जबकि शांखायन गृह्यसूत्र में इस कर्म के बाद अलग से 'गोष्ठकर्म' में यह मन्त्र आया है।⁹⁸ वहाँ भी इसमें पाठ भेद पाया जाता है।

अब गौओं के गोचर भूमि की ओर जाते समय पूषा हमारी गौओं के पीछे-पीछे जाए अर्थात् उनका अनुगमन करे⁹⁹ यदि गायें इधर-उधर भागे तो उन्हें रोकने के लिए परिपूषा मन्त्र का उच्चारण किया जाता था।¹⁰⁰ सम्भवत यह प्रतीत होता है कि वैदिक काल में मन्त्रोच्चारण से अबोध पशुओं पर नियन्त्रण पाना सहज था। वस्तुतः लगता है कि वे भी वैदिक मंत्रों के ज्ञान की अनुभूति आसानी से कर लेते थे।

जब गायें वापस लौट जाएं तो इस प्रकार की कामना की जाती है कि सभी गायें दुग्धामृत और घृत देने वाली हों तथा मेरे गोष्ठ में गोधन की वृद्धि हो¹⁰¹ गौओं के आगमन पर ही एक सूक्त 'आ गावो अगमन्' के पाठ भी प्रकृत गृह्यसूत्र में उपलब्ध होता है। गौओं के घर में

⁹⁷ कौषी. गृ.- ३.५.४

⁹⁸ शां. गृ.-३.९.१

⁹⁹ क. "पूषा गा अन्वेतु नः। ऋक्.- ६.५४.५ ख. कौषी.गृ.-३.५.८

¹⁰⁰ कौषी. गृ.-३.८.५

¹⁰¹ यासामूध्रश्चतुर्विलं मधोः पूर्ण घृतस्य च ।

ता नः सन्तु पयस्वतीबहीष्ठ घृताच्यः ॥ कौषी.गृ.- ३.५.६

पहुँचने पर उपर्युक्त क्रिया पूर्ण हो जाने पर उन्हें गोष्ठ गोशाला में प्रवेश कराना चाहिये जैसे गौओंको गोष्ठमें प्रवेश करवाने लगे तो 'आ गावो अग्मन्' सूक्त के अन्तिम मन्त्र का पाठ किया जाना चाहिए। गौओं के गोष्ठ में चले जाने पर भी उनके लिए वायु शुभ कारक हो इस उद्देश्य से 'मयोभूर्वातः' मन्त्र से रहस्योदघाटन किया गया है।¹⁰²

ऋग्वेदीय गृह्यसूत्र कौषीतक एवं शांखायन दोनों में अति स्वल्प पाठान्तर सहित उक्त कृत्य का विधान उपलब्ध है। स्थल भेद यह है कि कौषीतक गृह्यसूत्र में यह कृत्य आग्रयण के अन्तर्गत ही उपनिबद्ध है जबकि शांखायन गृह्यसूत्र में आग्रयण कर्म के बाद पृथक् गोष्ठ कर्म के विवरण में समायोजित है।

सम्पूर्ण कर्म के अन्त में होम करना चाहिए। विधान है कि जो भी गाय प्रथम प्रसव करे अर्थात् सद्य प्रसूता हो (तत्काल निकला हुआ दूध), उसके दूध को लेकर इन ऋचाओं से आहुतियाँ प्रदान करने का निर्देश वैदिक साहित्य में मिलता है।¹⁰³

वास्तव में इस सम्पूर्ण कृत्य का सम्बन्ध वृषोत्सर्गकर्म के अत्यन्त निकट है जिससे ऐसा लगता है कि यह उसी कृत्य का एक मात्र अंश है। अतइस समस्त प्रक्रिया का निरूपण वृषोत्सर्ग के कृत्य के साथ भी किया जा सकता है।

४. वैश्वदेवकर्म -

वैश्वदेव दैनिक कर्म है। जिसे प्रत्येक गृहस्थ को दैनन्दिन करना चाहिए। छः नित्यकर्मों में वैश्वदेव का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है।¹⁰⁴ मनुष्य जैसे संध्यावन्दनादि न करने से पाप का भागी

¹⁰² क. कौषी. गृ.- ३.५.७ ख. शां. गृ.- ३.९.४५.

¹⁰³ कौषी. गृ.- ३.५.८

¹⁰⁴ सन्ध्या स्नानं जपश्चैव देवतानां च पूजनम्।

वैश्वदेवं तथातिथ्यं षट् कर्माणि दिने दिने ॥ बृ. परा.- १.३९

होता है वैसे ही बलिवैश्वदेव न करने से भी प्रत्यवाय पाप का भागीदार होता है।¹⁰⁵ पञ्चमहायज्ञों में उदबोधित 'भूतयज्ञ' का ही दूसरा नाम वैश्वदेव कर्म है। शतपथ ब्राह्मण में पञ्चमहायज्ञों का सर्वप्राचीन उल्लेख है। इन्हें महासत्र भी कहा जाता है। ये हैं भूतयज्ञ, नृयज्ञ, पितृयज्ञ, देवयज्ञ तथा ब्रह्मयज्ञ।¹⁰⁶ इन पञ्चमहायज्ञों की महत्ता के परिप्रेक्ष्य में प्रकृतगृह्यसूत्रमें उल्लिखित है कि-

एते पञ्चमहायज्ञा वर्तन्ते यस्य नित्यशः।

समुक्तः सर्वपापेभ्यो नाकपृष्ठे महीयते ॥¹⁰⁷

अर्थात् इन कहे गए पञ्चमहायज्ञों को जो नित्यप्रति करते हैं, वह सभी पापों से मुक्त हो कर पृथ्वी पर स्वर्ग के समान उत्तम सुख भोगते हैं। गृहस्थ की दिनचर्या में पाँच ऐसी उपयोगी वस्तुएँ- चूल्हा चक्री झाड़ू ऊखल मूसल घड़ा हैं। इनका उपयोग किए बिना गृहस्थ का जीवन सार्थक नहीं है और न चाहने पर भी इनके उपयोग से जीव हिंसा की सम्भावना रहती है। जीव हिंसात्मक पापों से मुक्ति हेतु नित्यप्रति पञ्चमहायज्ञों को अवश्य करना चाहिए।¹⁰⁸ वैश्व देव शब्द अर्थ की दृष्टि से अत्यंत व्यापक है -जिसमें समस्त देव, पितृ एवं मनुष्य आदि देवताओं को लक्ष्य करके यह कर्म किया जाता है।¹⁰⁹ इस तथ्य की पुष्टि वाचस्पत्यम् तथा अन्य ग्रन्थों में भी निम्न प्रकार से हुई है-

¹⁰⁵ प्रत्यवायमाह माधवीये व्यासः -

पञ्चयज्ञास्तु यो मोहन्न करोति गृहाश्रमी।

तस्य नायं न च परोलोको भवति धर्मतः ॥ दे. भा.- ११.२२

¹⁰⁶ क. शत. ब्रा.- ११.५.६.१ ख. तैत्ति. आ.- २.१०

¹⁰⁷ कौषी. गृ.- ३.१०.३५

¹⁰⁸ मनु.- ३.६८.७०

¹⁰⁹ क. अथेदानीं वैश्वदेवो वक्ष्यते। वैश्वदेव इति कर्मनामधेयम्। कौषी. गृ.- ३.१०.१ पर भवत्रात टीका
ख- वैश्वदेव . विश्वे देवा देवता अस्येति वैश्वदेवम्। पा. गृ.-२.९ पर हरिहर भाष्य

विश्वेभ्यो देवेभ्यो देयो बलिः अण् ।

वैश्वदेवदेवोद्देशेन दीयमाने बलौ।¹¹⁰

इस सन्दर्भ में कतिपय मध्यकालीन ग्रन्थों में उल्लिखित है कि वैश्वदेव उस कृत्य का नाम है जिसमें प्रतिदिन देव पितृ एवं मनुष्यादि को आहुतियाँ दी जाती हैं या उनके निमित्त भोजन पकाया जाता है।¹¹¹

प्रतिदिन घर में जो हविष्यान्न पकाया जाता है उसी से वैश्वदेव करना चाहिए। इस विषय में प्रकृतगृह्यसूत्र में भी निर्देश है कि-

वैश्वदेवस्य सिद्धस्य सायंप्रातर्गृह्यग्ना जुहुयात् ।¹¹²

अर्थात् 'पकाये गए वैश्वदेव अन्न से सायं-प्रातः होम करना चाहिए'। होम से पूर्व महान्तं कोशम् से अग्नि का तीन बार पर्युक्षण चारों ओर जल छोड़कर अभिषेचन करके निम्नलिखित मन्त्रों से आहुतियाँ प्रदान करें ¹¹³

ॐ अग्नये स्वाहा । इदं अग्नये इदन्न मम ।

ॐ सोमाय स्वाहा । इदं सोमाय इदन्न मम ।

ॐ इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा । इदं इन्द्राग्निभ्यां इदन्न मम ।

ॐ भरद्वाजधान्वन्तरये स्वाहा । इदं भरद्वाजधान्वन्तरये इदन्न मम ।

ॐ प्रजापतये स्वाहा । इदं प्रजापतये इदन्न मम ।

¹¹⁰ क.वाच.पृ.- ४९७८

ख. शब्द.पृ.- ४१४

¹¹¹ क.स्मृत्यर्थसार.पृ.- ४७

ख. पराशरमाधवीय १.१, पृ.- ३८९

¹¹² कौषी. गृ. ३.१०.१

¹¹³ कौषी. गृ. ३.१०-३.४

ॐ अनुमत्यै स्वाहा । इदं अनुमत्यै इदन्न ॐ श्रियै स्वाहा । इदं श्रियै इदन्न मम ।

ॐ सरस्वत्यै स्वाहा । इदं सरस्वत्यै इदन्न मम ।

ॐ विष्णवे स्वाहा । इदं विष्णवे इदन्न मम ॥

ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा । इदं विश्वेभ्यो देवेभ्यः इदन्न मम ।

ॐ सर्वाभ्यो देवताभ्यः स्वाहा । इदं सवयो देवताभ्यः इदन्न मम ।

ॐ अग्नये स्विष्टकृते स्वाहा । इदं अग्नये स्विष्टकृते इदन्न मम ।

इन आहुतियों के अनन्तर वास्तु मध्य आँगन के बीच बलि दिए जाने का विधान है।¹¹⁴ इस कृत्य में आहुतियों में निर्दिष्ट इन देवताओं के नामों के सन्दर्भ में गृह्यसूत्रों में प्रायः मतभेद पाया जाता है किन्तु फिर भी ये देवता अधिकतर उल्लिखित हैं- अग्नि, सोम, प्रजापति, धन्वन्तरि, विश्वदेवाः, अग्नि स्विष्टकृत, अनुमति एवं ब्रह्मा ।¹¹⁵ गोभिल तथा खादिरगृह्यसूत्र में वैश्वदेव के स्थान पर मात्र बलिहरण का उल्लेख हुआ है।¹¹⁶

मनु ने भी उक्त कर्म में आहुतियों में विहित अग्निलिखित देवताओं-अग्नि, सोम, अग्नीषोम, विश्वदेव, धन्वन्तरि, कुहू, अनुमति, प्रजापति, द्यावापृथिवी अग्निस्विष्टकृत को गिनाया है।¹¹⁷ इनमें तथा प्रकृतगृह्यसूत्र की परिगणना में किंचित् मतभेद पाया जाता है। गृह्यसूत्रों में आहुतियों में विहित देवताओं की परिगणना में अन्तर होना स्वाभाविक है। वास्तव में गृह्यसूत्र वेद की भिन्न

¹¹⁴ कौषी. गृ. ३.१०.४

¹¹⁵ क. वही . ख. शां. गृ. २.१४-१.४ ग. आ. गृ. १.२-१.३
घ. पा. गृ. २.९-१.२ ड. बौ. गृ. २.८.९ च. गो. गृ. १.४.४

¹¹⁶ क. गो. गृ.- १.४-१.१५ ख. खा. गृ.- १.५-२२.३५

¹¹⁷ मनु. ३-८४.८६

भिन्न शाखाओं से सम्बद्ध हैं इसीलिए भ्रमित न होकर अपनी शाखा से सम्बद्ध गृह्यसूत्र के अनुसार वैश्वदेव कर्म का सम्पादन करना चाहिए।¹¹⁸

कौषीतकगृह्यसूत्र के अनुसार अग्नि, सोम आदि जिन देवताओं को लक्ष्य करके अग्नि में आहुतियाँ देकर प्रथम बलिहरण 'वास्तुमध्य में' किया गया है। उन्हीं देवताओं के साथ 'नमो ब्राह्मणे ब्राह्मणेभ्यश्च' मन्त्र कह करके एक अन्य बलि वास्तोष्पति को समर्पित करनी चाहिए।¹¹⁹ तत्पश्चात् दिशाओं के अधिष्ठात्री देवता के निमित्त क्रमशः—इन्द्र को पूर्व में, यम को दक्षिण में, वरुण को पश्चिम में, सोम को उत्तर में तथा बृहस्पति को ईशान कोण में बलिहरण का विधान है।¹²⁰ इसके साथ ही प्रकृतगृह्यसूत्र में उत्तर-पूर्व दिशाओं से कल्याण की कामना करते हुए मरुत आदि चार देवताओं के प्रति नमस्कार ज्ञापित किए जाने का उल्लेख है।¹²¹ दिशाओं तथा विदिशाओं के निमित्त बलिहरण एवं नमस्कार की विधि सम्पन्न होने पर परिक्रमा करनी चाहिए। परिक्रमा सदैव दक्षिण्यावर्त क्रम से की जाती है। इस विषय में कौषीतकगृह्यसूत्र में उल्लिखित है। कि दक्षिणपूर्व में संध्यानि देवता, दक्षिणपश्चिम में नैऋत्य देवता, उत्तरपश्चिम में वायु देवता तथा पूर्वोत्तर दिशा में रुद्र ध्यान करके प्रदक्षिणा करनी चाहिए।¹²² विविध दिशाओं में बलिहरण से यह प्रतीत होता है कि सम्भवतः यह मनुष्य जीवन के लिए सब ओर से कल्याण की कामना की गई है।

अब सूर्यमण्डल की ओर खड़े होकर विधिवत् नमनपूर्वक प्रायः आदित्यों, नक्षत्रों, ऋतुओं, मासों, अर्धमासों, दिन-रातों, सम्बत्सरो, पुषा, पथिकृत, धाता, विधाता आदि को बलिहरण का

¹¹⁸ वैश्व देवं प्रकुर्वीत स्वशाखाविहितं यथा व्यासस्मृति-०१, पृ. २१२

¹¹⁹ कौषी. गृ.- ३.१०.५

¹²⁰ कौषी. गृ.- ३.१०.६

¹²¹ 'नमो मरुद्भ्योऽश्विभ्याम्' 'नमश्छन्दोभ्य ऋषिभ्यश्च' इत्य पराजितायां दिशी। वही- ३.१०७.

¹²² कौषी. गृ.- ३.१०.८

निर्देश है।¹²³ इस प्रकार घर की देहली पर मरुद्गण के निमित्त, ऊखल में औषधीजन्य वनस्पतियों के निमित्त, जलपात्र के निकट पर्जन्य के निमित्त, शिला पर विष्णु के निमित्त, शय्या के शिरोभाग में श्री के निमित्त, पादभाग में भद्रकाली के निमित्त, अनुगुप्तदेश में मित्र के निमित्त, प्रत्यक्ष ज्ञान किए हुए देवताओं तथा धनपति के निमित्त, उत्तर दिशा में बलिहरण करना चाहिए।¹²⁴ यह विधान अन्य गृहसूत्रों में भी उपलब्ध होता है।¹²⁵ निशाचरों को सायं काल में तथा दिवाचरों को प्रातःकाल में बलिहरण का रहस्योद्घाटित हुआ है।¹²⁶

बलिहरण में विहित देवताओं की परिगणना में अन्तर प्रायः देखा जाता है। यह अन्तर भिन्न भिन्न गृह्यसूत्रों में द्योतित है – मानव गृह्यसूत्र के अनुसार इस कृत्य में विहित देवता, आपातिकों, सम्पातिकों, ऋक्षों, यक्षों, पिपीलिकाओं, पिशाचों, अप्सराओं, गन्धर्वों, गुह्यकों, शलों, पन्नगों को पूर्व में बलि अर्पण व्यवस्था में गिना गया है।¹²⁷ कौशिक गृह्यसूत्र के अनुसार वासुकि, चित्रसेन, चित्ररथ, तक्ष, उपतक्ष को गृहकोणों में बलिहरण की पुष्टि हुई है।¹²⁸ आशा, श्रद्धा, मेधा, श्री, ह्री और विद्या को अग्नि के पूर्व में बलि दिए जाने का उल्लेख है।¹²⁹ भूतयज्ञ के पश्चात् गृहस्थ ब्रह्म आदि को प्रदान की गई बलि के दक्षिण दिशा में प्राचीनवीती होकर वैश्वदेव

¹²³ वही- ३.१०.९

¹²⁴ कौषी. गृ.- ३.१०-१०.१६

¹²⁵ क. गो. गृ.- ५.१२.१८ ख. शा. गृ.- ३.१४-९.१७

¹²⁶ कौषी. गृ.- ३.१०.१७१९.

¹²⁷ मा. गृ.- २.१२.१७

¹²⁸ कौ. गृ.- ७४.८५.१०

¹²⁹ इस संदर्भ में १. गो. गृ.- ५.१५.२९ तथा पा. गृ.- २.४.९ पर्याप्त अन्तर द्रष्टव्य है।

अन्न के शेष से प्रदत्त एक बलि ही पितृयज्ञ है।¹³⁰ प्रकृत गृह्यसूत्र में इस बलि पितृ यज्ञ के समय अग्निदग्धा का पाठ किये जाने का निर्देश है।¹³¹

अतिथि सत्कार भारतीय संस्कृति का उच्चादर्श है। अतिथि शब्द की गरिमा को स्पष्ट करते हुए मनु ने कहा है कि -

एकरात्रं तु निवसन्नतिथिब्राह्मणः स्मृतः ।

अनित्यं हि स्थितो यस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ॥¹³²

अर्थात् एक रात्रि के लिए ब्राह्मण किसी अन्य के घर में निवास करें तो वह अतिथि कहलाता है। नित्य स्थिति बनाने वाला ब्राह्मण अतिथि नहीं कहलाता। गृह्यसूत्रों में भी उल्लेख है कि अतिथि¹³³ अथवा ब्राह्मण¹³⁴ को भोजन करवाना ही नृयज्ञ का परिचायक है।

कौपीतकग्रह्यसूत्र में नृयज्ञ की महिमा स्पष्ट झलकती है। वहीं इस सन्दर्भ में कहा गया है कि गृहस्थ को अन्न दूसरों के लिए निकाले बिना कभी नहीं खाना चाहिए अकेले नहीं खाना चाहिए न ही दूसरों से पहले खाना चाहिए।¹³⁵ इस विषय में ऋग्वेद में एक ऋचा कही गई है¹³⁶-

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेतास्सत्यं ब्रवीमि वध इत्स तस्य ।

नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥

¹³⁰ कौषी. गृ.- ३.१०.२०

¹³¹ कौषी. गृ.- ३.१०.२०

¹³² मनु.- ३.१०२

¹³³ क. बौ. गृ.- २.९.१-३ ख. खा. गृ. ३.१४

¹³⁴ क. कौषी. गृ.- ३.१०-२१.३० ख. शां. गृ.- २.१४.१९-२६ ग. पा. गृ.- २.९-११.१३

¹³⁵ नानवत्तमश्रीयात्। नैकः। न पूर्वम् । कौषी. गृ.- ३.१०-२६.२७

¹³⁶ कौषी. गृ.- ३.१०.३०

अर्थात् कृपण-अदाता मनुष्य व्यर्थ ही सम्पत्ति प्राप्त करता है। मैं यह कहता सत्य हूँ। उसका वह मरण ही है, जो न तो देवों को हवि अर्पण करता है और न ही अपने समान पोष्य मित्र को देता है, केवल स्वयं खा जाता है, वह केवल पाप ही प्राप्त करता है।

प्रकृतगृह्यसूत्र में कहा गया है कि खेत में गिरा हुआ अन्न संचित करके जीविका चलाने वाले तथा नित्य अग्निहोत्र करने वाले तथा गृहस्थ के घर से ब्राह्मण बिना आथित्यसत्कार से रहे तो वह उस गृहस्थ के समस्त पुण्यों को हर लेता है।¹³⁷ शांखायन तथा मनु ने भी यही बात कही है।¹³⁸ आचार्य, पिता एवं मित्र घर में अतिथि नहीं होते तथा न ही गाँव से आया हुआ कोई व्यक्ति प्रदेश में बसे व्यक्ति के पास रहने से, सहपाठी तथा मित्र और कर्मकाण्ड सम्पादन के लिए आए ब्राह्मण ये सब अतिथि नहीं माने जाते हैं।¹³⁹ अन्यत्र भी इस तथ्य की पुष्टि होती है।¹⁴⁰ इन सब लोगों से निकट का सम्बन्ध होता है, इनसे घर की कोई भी स्थिति रहस्यात्मक नहीं होती। इसलिए इन सबका घर में सम्मान किया जाता है, किन्तु अतिथि नहीं माना जाता है।

वैदिक संस्कृति में छः व्यक्ति विशिष्ट सम्मान के पात्र हैं। जिनके सन्दर्भ में कौषीतक गृह्यसूत्र में अर्घ्य प्रदान करने का निर्देश है। इन छः व्यक्तियों में आचार्य, ऋत्विक्, जामाता, राजा, प्रिय तथा स्नातक में से कोई भी आए, उन्हें उपहार स्वरूप गाय, बकरी या जो भी

¹³⁷ कौषी. गृ.- ३.१०.३५

¹³⁸ क. शां. गृ.- २.१७.१ ख. मनु. ३.१००

¹³⁹ कौषी. गृ.- ३.१०.३५

¹⁴⁰ क. शां. गृ.- २.१६.३ ख. मनु. ३.१०३

अनुकूल समझे उसे उपस्थित करना चाहिए। वास्तव में इन छः अधिकारीयों को जो कुछ दिया जाता है वह क्रमशः- अग्नि, बृहस्पति, प्रजापति, इन्द्र, मित्र तथा इन्द्राग्नि को प्राप्त होता है।¹⁴¹

अर्घ की महिमा प्रतिष्ठा का परिचायक है। यदि वह वर्ष में एक से अधिक भी सोमयाग करें तो भी जिनको अर्घ दिया गया है वे ही इसका यज्ञ करावें। जिनको अर्घ नहीं दिया गया वे नहीं।¹⁴² सम्मानीय अतिथि के सत्कार में गृहस्थ मधुपर्क की व्यवस्था करता है। घी, शहद, दही एवं जल का सम्मिश्रण ही मधुपर्क है।¹⁴³ यह मधुपय पदार्थ पुष्टिवर्धक होते हैं। जिनमें शारीरिक पुष्टि एवं सम्मान निहित है।

५. अष्टकाकर्म-

आग्रहायणी कर्म के पश्चात् अष्टकाकर्म किया जाता है। अष्टका को सात पाकयज्ञों एवं चालीस संस्कारों में गिना गया है।¹⁴⁴ 'अष्टन्' शब्द से 'अष्टका' की व्युत्पत्ति हुई, जिसका अभिप्राय है, वह कृत्य जिसके प्रतिष्ठित देवता पितर लोग होते हैं।¹⁴⁵

आग्रहायणी (मार्गशीर्ष) पूर्णिमा के अनन्तर अपर पक्ष में तीन कृष्णपक्ष अष्टकायें पौष माघ एवं फाल्गुन अष्टमी में होने वाली होती हैं, कौषीतकगृह्यसूत्र की भाँति अन्य अधिकांश

¹⁴¹ कौषी गृ. ३.१०-३१.३२

¹⁴² कौषी. गृ. ३.१०३३.-३४

¹⁴³ सर्पिर्मधुनी दध्युदके च सन्नीय । एष एव मधुपर्करू । कौषी. गृ. १.१६.४-५

¹⁴⁴ गौ.धर्म.- ८.१९

¹⁴⁵ अष्टा.- ७.३.४५ पर वार्तिक

गृह्यसूत्रों में भी मात्र तीन ही अष्टका कृत्य निर्देशित हैं।¹⁴⁶ जबकि आश्वलायनगृह्यसूत्र के अनुसार अष्टका से हेमन्त तथा शिशिर की दो ऋतुओं के चार मासों मार्गशीर्ष, पौष, माघ तथा फाल्गुन मासकी कृष्ण अष्टमियों के चार कृत्यों का रहस्योदघाटन होता है।¹⁴⁷ कौपीतकग्रह्यसूत्र की 'भवत्रात' टीका में शौनक के शब्दों को उद्धृत करते हुए इन चार अष्टकाओं का उल्लेख किया गया है।¹⁴⁸ पारस्करगृह्यसूत्र में पहले तीन अष्टकाओं का ही वर्णन है तथा अन्त में एक चतुर्थ अष्टका वर्षा ऋतु में शाक के होम से सम्पन्न किए जाने के लिए संकेतित है।¹⁴⁹

इस कृत्य को पार्वण श्राद्ध के सदृश मासिक श्राद्ध में परिगणित किया जाता है। अथर्ववद के कतिपय मन्त्रों में विवेचित अष्टका के व्यवहार से ऐसा लगता है कि यह नववर्षोत्सव था।¹⁵⁰ जैमिनिपूर्वमीमांसासूत्र के भाष्य में शबर ने, अथर्ववद एवं आपस्तम्बमन्त्रपाठ में आए हुए मन्त्र को 'अष्टका' का द्योतक माना है।¹⁵¹ संवत्सर को एकाष्टका का पति¹⁵² एकाष्टका को माघ मास की पूर्णिमा के बाद की अष्टमी कहा गया है।¹⁵³ एकाष्टका का आह्वान सुख-समृद्धि, संतान एवं ऐश्वर्य प्रदान करने हेतु किया गया है।¹⁵⁴

¹⁴⁶ क. खा. गृ. ३.१२.१ ख. पा. गृ. ३.३.१

¹⁴⁷ हेमन्तशिशिरयोश्चतुर्णामपरपक्षाणामष्टमीष्वष्टकाः । आश्व. गृ.- २.४.१

¹⁴⁸ कौषी० गृ०, पृ० १४९

¹⁴⁹ मध्यावर्षे च तुरीया शाकाष्टका। पा. गृ.- ३.३.१३

¹⁵⁰ यां जनाः प्रतिनन्दन्ति रात्रिं धेनुमिवायतीम् ।

संवत्सरस्य या पत्नी सा नोअस्तु सुमंगली॥ अथर्व. ३.१०.२

¹⁵¹ क. जैमि. सू.- १.३.२ ख. अथर्व.- ३.१०.२

¹⁵² अथर्व.- ३.१०.८

¹⁵³ जैमि. सू.- ६.५-३२. ३७

¹⁵⁴ अथर्व. - ३.१०.३

अष्टका के प्रधानतः तीन अंग है - ब्राह्मण-भोजन एवं अन्वष्टक्य अथवा अन्वष्टका। अष्टकाकर्म यदि तीन मासों में सम्पादित किया जाए, तो ये तीनों अंग प्रति अष्टका में सम्पन्न किए जाते हैं। जब यह कृत्य केवल एक मास में अर्थात् माघ मास की पूर्णिमा के अनन्तर हो तो कृष्णपक्ष की सप्तमी, अष्टमी तथा नवमी को किए जाते हैं। इस व्यवस्था की पुष्टि बौधायनगृह्यसूत्र में भी होती है कि यह कृत्य माघ मास के कृष्ण पक्ष की तीन तिथियों सप्तमी, अष्टमी तथा नवमी को अथवा वैकल्पिक स्थिति में मात्र एक दिन माघ कृष्ण पक्ष की अष्टमी को भी सम्पादित किया जा सकता है।¹⁵⁵ एक ही दिन में सम्पादित होने पर प्रायतीनों विधियों उसी दिन एक के बाद एक अवश्य की जानी चाहिए। ऋग्वेदीय आश्वलाधन गृह्यसूत्र में भी वैकल्पिक व्यवस्था उल्लिखित है कि अष्टका कृत्य केवल अष्टमी को संपन्न किये जा सकते हैं ¹⁵⁶ किन्तु कौषीतकगृह्यसूत्र में ऐसी किसी व्यवस्था का उल्लेख नहीं हुआ है। अब सर्वप्रथम अष्टका कृत्य के प्रधान अङ्ग होम का रहस्योद्घाटन किया जाता । जिसमें कौषीतकगृह्यसूत्र शाखा के अनुसार प्रथमाहुति अधोलिखित मन्त्र सेदिए जाने का निर्देश है ।¹⁵⁷

ॐ इयमेव सा या प्रथमा व्यौच्छदन्तरस्यां चरति प्रविष्टा ।

वधूर्जनान नवकं जनित्री क्रय एनां महिमानः सचन्ता स्वाहा ॥

यह मन्त्र विभिन्न संहिताओं में उपलब्ध होता है।¹⁵⁸ प्रस्तुत मन्त्र से स्विष्टकृत होम की आहुति दी जाती है।

ॐ यस्यां वैवस्वतो यमस्सर्वे देवास्समाहिताः।

¹⁵⁵ बौ. गृ. - २.११-१.४

¹⁵⁶ आश्व. गृ. - २.४.२

¹⁵⁷ तासां प्रथमायां शाकं । कौषी. गृ. - ३.१५.२

¹⁵⁸ क. मैत्रा. सं.- २.१३.१० ख. काठ. सं.- ३९.१०

अष्टका सर्वतोमुखी सा मे कामानतीतृपत् ॥

आहुस्ते ग्रावाणो दन्तानूधः पवमानः ।

अमासांश्च मासांश्चाङ्गानि नमस्ते सुमनामुखि स्वाहा ॥

इस मन्त्र को संभवतः किसी ऐसी संहिता से लिया गया है जो अद्यावधि अनुपलब्ध है। इस मन्त्र में काव्यात्मक शैली से अष्टका को सम्पूर्ण काल की नियन्त्रक शक्ति बताया गया है क्योंकि उक्त मन्त्र में सूर्यपुत्र 'यम' काल का द्योतक है।

द्वितीय अष्टका वपा होम के रूप में प्रसिद्ध है। प्रकृतग्रह्यसूत्र के अनुसार वर्ष के मध्य में चार मन्त्रों की महाहुतियों का शीघ्रता से पाठ करके वपा होम का विधान किया गया है।¹⁵⁹

ॐ वह वपां जातवेदः पितृभ्यो यत्रैनान् वेत्थ सुकृतस्य लोके ।

मेदसःकुल्या उप स्रुताश्चवन्ति सत्यास्सन्तु यजमानस्य कामास्वाहा ॥¹⁶⁰

इस मन्त्र में उद्धोधित 'अग्निदेव' परलोक में पितरों की अवस्था के ज्ञाता माने गए हैं। जिनके माध्यम से वपा पितरों को समर्पित की जाती है और उनसे अपने पुण्य कर्मों के जागृत होने अथवा शुभाशीष की प्राप्ति हेतु की जाती है वस्तुतः यजमान द्वारा वपा की आहुति के लिए प्रायः गृह्यसूत्रों में पाठान्तर सहित यही मन्त्र उल्लिखित है।¹⁶¹

¹⁵⁹ कौषी. गृ.- ३.१५.४

¹⁶⁰ कौषी. गृ.- ३.१५.४

¹⁶¹ क. आश्व. गृ.- २.४.१३ ख पा.गृ.- ३.३.९ ग. मा. गृ.- २.९.४

तत् पश्चात् चार महाव्याहृतियाँ और 'ये तातृषुः' चार मन्त्र इस प्रकार आठ आहुतियाँ स्थालीपाक से प्रदान की जाती हैं।¹⁶² यदि यज्ञकर्ता अवैध सन्तान हो तो वह बार महाव्याहृतियों के स्थान पर अग्रलिखित इन चार मन्त्रों को बोलते हुए आहुति दे।¹⁶³

ॐ अन्तर्हिता गिरयोऽन्तर्हिता पृथिवी मही मे ।

दिवा दिग्भ्यश्च सर्वाभिरन्यमन्तर्दधे पितृभ्यो अमुगमै स्वाहा ॥

ॐ अन्तर्हिता ऋतवोऽहोरात्रा सुसन्धिकाः ।

अर्धमासाश्च मासाश्चाङ्गानि नमस्ते सुमनामुखि स्वाहा ॥

ॐ यास्तिष्ठन्ति यास्त्रवन्ति या अद्भिः परितस्थुषी ।

अद्भिः सर्वस्य भर्तृभिरन्यतः पितुर्दधेऽमुष्मै स्वाहा ॥

ॐ यन्मे माता प्रलुलोभ चरत्यपतिव्रता ।

रेतस्तत्पिता वृङ्कामाहुरन्योऽवपद्यतामष्मै स्वाहा ॥

शांखायनगृह्यसूत्र में स्पष्ट किया गया है कि यज्ञकर्ता अवैध सन्तान हो तो उसे इन चार मन्त्रों में 'अमुष्या' के स्थान पर अपनी माता का नाम प्रयुक्त करना चाहिए।¹⁶⁴

इन चार मन्त्रों में प्रथम दो मन्त्र अन्यत्र किसी भी संहिता में उपलब्ध नहीं हैं। जबकि दो मन्त्र अन्यत्र उपलब्ध हैं।¹⁶⁵

¹⁶² महाव्याहृतिभिश्चतसृभिः श्ये तातृषुःश् इति चतसृभिरष्टावाहुतीः स्थालीपाकोऽवदानमिश्रः ।

¹⁶³ कौषी. गृ.- ३.१५.४

¹⁶⁴ अन्यत्रकरणाऽन्यजातः पुरुष.....अमुष्या इत्यत्र स्वमातृनामग्रहणम् ।

शां. गृ. भाष्यसन्दर्भ, पृ. ८१

प्रकृतगृह्यसूत्र में तृतीय एवं अन्तिम अष्टकाख्य कृत्य में अपूप (पुआ) की आहुति का विधान है। जिस कृत्य में अपूप होम किया जाता है उसे औपकार्य कर्म कहते हैं।¹⁶⁶ इस आहुति में अधोलिखित मन्त्र विहित हैं –

उक्थ्यश्चातिरात्रश्च सद्यस्क्राश्छन्दसा सह ।

अन्ये च क्रतवो देवा ऋषयः पितरस्तथा॥

ऋतवः सर्वभूतानि शिवश्शान्ताश्च मे सदा।

सन्तु मे अपूपकृतामष्टके नमस्ते सुमनामुखि स्वाहा॥¹⁶⁷

आपस्तम्बगृह्यसूत्र में भी अन्तिम अष्टका के अन्त में इसी मन्त्र का व्यवहार हुआ है। परन्तु अन्तर इतना है कि जहाँ कौषीतकगृह्यसूत्र में उक्त मन्त्र अपूपाकृति के लिए विनियुक्त हैं वहीं इस गृह्यसूत्र में यह दूध में पकाये हुए पिष्टान्न की आहुति के लिए निर्देशित है।¹⁶⁸

इन आहुतियों के पश्चात् इन्हीं के समान स्विष्टकृत आहुति दी जाती है।¹⁶⁹ वस्तुतः इस कर्म में आहुतियों में विशेष मतभेद सामने आते हैं प्रकृत गृह्यसूत्र की भांति अन्य गृह्यसूत्रों में भी तीनों ,विभिन्न अष्टकाओं में पके हुए शाक ,वपा तथा अपूप की आहुतियाँ दी जाती हैं।¹⁷⁰ पारस्कर आदि अन्य गृह्यसूत्रों में इन आहुतियों के क्रम में भिन्नता है।

¹⁶⁵ क. प्रथम मन्त्र हिरण्य. गृ.- २.१०.७

ख. द्वितीय मन्त्र ,आप .गृ. ८.३.२१

¹⁶⁶ तस्या अष्टकायाः औपकार्यमुपकारकम्। आप. गृ.- ८.२१.११ पर तात्पर्यदर्शन

¹⁶⁷ कौषी. गृ.- ३.१५.६

¹⁶⁸ आप. गृ.- ८.२२.६

¹⁶⁹ कौषी. गृ. -३.१५.६

¹⁷⁰ क. कौषी. गृ.- ३.१५-२.३ ख. का. गृ. ६१.३

अष्टका कृत्य के तृतीय भाग के रूप में अन्वष्टक्य अथवा अन्वष्टका नामक कृत्य का महत्वपूर्ण स्थान है। कौषीतक गृह्यसूत्रकार का मत है कि अन्वष्टका कृत्य में पिण्डपितृ यज्ञ की विधि मानी जाती है।¹⁷¹ दूसरे गृह्यसूत्रों में भी यह कथन समान मिलता है।¹⁷² प्रकृत गृह्यसूत्र में इसका अल्पविस्तार है जबकि गोभिल तथा खादिरगृह्यसूत्र में इस कृत्य का विशद वर्णन हुआ है।¹⁷³ यह अन्वष्टक्य कृत्य गोग्रास आदि से यथा श्रद्धा अवश्य करना चाहिए इस बात पर कौषीतक¹⁷⁴ तथा शांखायन¹⁷⁵ ने विशेष बल दिया है। अतः यह कृत्य तभी शाश्वत रह सकते हैं जब कर्ता इन्हें अपना मौलिक कर्तव्य समझ कर पूरा करता रहेगा।

६.सर्पबलि-

यह कृत्य सर्पभय से मुक्त होने के परिप्रेक्ष्य में अनुष्ठेय है। इसके मूल में सर्पों के भय की भावना स्पष्ट अभिव्यक्त होती है। जिसकी प्रामाणिकता अधोनिर्दिष्ट है।

सर्पेभ्यो विभ्यत् श्रावण्यां तुष्णीं भौमेककपालं

श्रपयित्वाऽक्षतसक्तून् पिष्टवाजुहोति ॥¹⁷⁶

सर्पों के अनिष्ट से आत्म सुरक्षा की प्राप्ति हेतु गृहस्थ जो विधिवत पूजा अर्चना करता वही सर्पबली है। कौषीतकगृह्यसूत्र¹⁷⁷ तथा कतिपयगृह्यसूत्रों¹⁷⁸ में इस कृत्य को सर्पबलि कहा गया है जबकि कुछ अन्य गृह्यसूत्रों में इसे श्रव श्रवणा कर्म भी कहा गया है।¹⁷⁹

¹⁷¹ कौषी. गृ.- ३.१५.७

¹⁷² क. आप. गृ.- २.५.३ ख. शां. गृ. ३.१३.७

¹⁷³ क. खा. गृ.- ३.५ ख. गो. गृ.- ४.२.३

¹⁷⁴ श्रोऽन्वष्टक्यां.....मेऽष्टका इति।

न त्वेव न कुर्वीत न त्वेव न कुर्वीत । कौषी. गृ.- ३.१५- ७.८

¹⁷⁵ शां. गृ.- ३.१३-३.६

¹⁷⁶ मा. गृ.- २.१६.१

इस कृत्य का सम्पादन श्रावण मास की श्रवण अथवा हस्त नक्षत्र से युक्त पूर्णमासी के दिन किया जाना चाहिए।¹⁸⁰ अधिकांश गृह्यसूत्रों में भी श्रावणी पूर्णिमा को ही उक्त कृत्य सम्पन्न किए जाने का उल्लेख है।¹⁸¹ इस प्रसंग यह है कि श्रावणी से स्पष्ट हो जाता पूर्णिमा को अनुष्ठित होने के कारण ही इसे 'श्रवणा कर्म' कहा जाता है।

कौषीतकगृह्यसूत्र में अक्षत सत्तुओं या स्थालीपाक पकाकर 'अग्रये' प्रभृति पाँच मन्त्रों को पढ़कर आहुतियाँ डालने का विधान है।¹⁸²मन्त्र-

ॐ अग्रये स्वाहा । इदं अग्रये इदन्न मम ।

ॐ विष्णवे स्वाहा । इदं विष्णवे इदन्न मम ।

ॐ श्रावण्यै स्वाहा । इदं श्रावण्यै इदन्न मम ।

ॐ पौर्णमास्यै स्वाहा । इदं पौर्णमास्ये इदन्न मम ।

ॐ वर्षाभ्यः स्वाहा । इदं वर्षाभ्यः इदन्न मम ।

इन आहुतियों के अनन्तर लाजा और अक्षत को घृत सिक्त करके इन दो मन्त्रों से होम करने का निर्देश है।¹⁸³

¹⁷⁷ कौषी. गृ.- ४.२

¹⁷⁸ बौ. गृ.- ३.१०.१

¹⁷⁹ क. शां. गृ.- ४.१५ ख. पा. गृ.- २.१४ ग. आ. गृ.- २.१.१-१५

¹⁸⁰ कौषी. गृ.- ४.२.१

¹⁸¹ क.आ. गृ.- २.१.१ ख. शां. गृ.- ४.१५.१ ग. पा. गृ.- २.१४.२

घ. हिरण्य. गृ.- २.१६.२ ङ. आप. गृ. ७.१८.५ च. गो. गृ.- ३.७.२

¹⁸² कौषी. गृ.- ४.२.१

¹⁸³ कौषी. गृ.- ४.२.२

ॐ दिव्यानां सर्पाणामधिपतये स्वाहा ।

ॐ दिव्येभ्यः सर्पेभ्यः स्वाहा ।

आश्वलायनगृह्यसूत्र¹⁸⁴ में स्थालीपाक पकाकर सूर्यास्त के समय अग्नि में उसकी आहुतियों का उल्लेख है। पारस्कर के अनुसार उक्त कृत्य में सर्पों के निमित्त धृतसिक्त सत्तुओं आहुतियों कही गई हैं।¹⁸⁵ हिरण्यकेशिगृह्यसूत्र में इस अवसर पर सर्पों को बलि प्रदान किए जाने का संकेत है।¹⁸⁶ गोभिल तथा खादिरगृह्यसूत्रों में भी उल्लिखित है कि गृहस्थ को चार मन्त्रों के उच्चारण पूर्वक चारों दिशाओं क्रमशः पूर्व-पश्चिम ,उत्तर-दक्षिण में स्थित सर्पों को बलि हरण करनी चाहिए ।¹⁸⁷ सम्भवतः यह चारों दिशाओं में बलि समर्पण किया जाना चारों ही दिशाओं में सर्पों से अभयदान की कामना द्योतित होती है।

आश्वलायन, आपस्तम्ब तथा हिरण्यकेशि ने भी सर्पों को बलि समर्पित करते हुए इस प्रकार के मन्त्रों ही विनियुक्त किया है जिसमें पृथ्वी, अन्तरिक्ष, आकाश एवं दिशाओं से को सब ओर से सम्बद्ध सर्पों आदि के लिए बलि प्रदान की गई है।¹⁸⁸ अतः यहाँ सब ओर से मङ्गल कामना अभिहित होती है।

कौषीतकगृह्यसूत्र में दिव्य सर्पों के अधिपति के निमित्त अन्तरिक्ष, पृथ्वी तथा दिशाओं से सम्बन्ध देवता को बलि प्रदान किए जाने का निर्देश है।¹⁸⁹ कौषीतकगृह्यसूत्र की मूल टीका में

¹⁸⁴ आ. गृ.- २.१.४

¹⁸⁵ पा.गृ.- २.१४.८

¹⁸⁶ हिरण्य. गृ.- २.१६.५

¹⁸⁷ क. गो. गृ.-१५.१३. ३७ ख. खा. गृ- ३.२.२

¹⁸⁸ क. आ. गृ.- २.१.९ ख. आप. गृ.- ७.१८.१० ग. हिरण्य.गृ.- २.१६.६

¹⁸⁹ कौषी. गृ.- ४.२.३.

दिशाओं की उपेक्षा की गई है, परन्तु 'भवत्रात' टीका में अन्तरिक्ष, पृथ्वी एवं दिशाओं आदि सब का रहस्योद्घाटन किया गया है।¹⁹⁰ दैनन्दिन रात्रि में प्रत्यवरोहण से पूर्व भूमि को जल से शुद्ध करके मौन होकर बलि उपहृत अमंत्रक करनी चाहिए।¹⁹¹ इस कर्म की जो आरम्भ की प्रक्रिया है वही समाप्ति की भी है। कहने का तात्पर्य है कि जिस प्रकार विधिवत् पूजन पूर्वक उक्त कृत्य का शुभारम्भ किया जाता है, ठीक उसी प्रकार विधिवत् यह कृत्य सम्पन्न भी किया जाता है।

दिव्य सर्पों के अधिपति को उत्तर पूर्व की ओर अग्नि के निकट पवित्र भूमि पर कुशा के आसन का भाव करके उन्हें सुसज्जित करते हुए सर्वप्रथम स्नान करवाकर उनको कंधी, चित्रित अनुलेपन पुष्पों से उपहृत, सूत्र तन्तु से आच्छादित, नेत्रों में अञ्जनादि तथा तत्पश्चात् दर्पण दिखाने का भाव किया जाता है। इस प्रकार भावपूर्वक प्रार्थना से सर्प भय से मुक्ति मिलती है।

७. आश्वयुजीकर्म -

पशुओं के हित से सम्बद्ध वैदिक कृत्यों में आश्वयुजी कर्म का महनीय प्रतिष्ठापरक स्थान है। नाम में अश्व शब्द की महिमा झलकती है, परन्तु इस कृत्य का प्रयोजन समस्त पालतूपशुओं - का हित अपेक्षित है। इस कृत्य का सम्पादन आश्विन मास की पूर्णिमा को किया जाता है।

वस्तुतः उक्त कृत्य में पशुओं के हित को ध्यान में रखते हुए 'खीर' पकाकर इन्द्र आदि देवताओं के निमित्त आहुतियाँ प्रदान की जाती हैं।¹⁹² तदनन्तर कौषीतकगृह्यसूत्र के अनुसार 'पृषातक' दूध मिश्रित घी से छः आहुतियाँ विधान क्रमशः इस प्रकार है ¹⁹³

¹⁹⁰ कौषी. गृ.- ४.२.४ पर भवत्रात टीका

¹⁹¹ वही - ४.२.३

¹⁹² आश्वयुज्यां पौर्णमास्यामैन्द्रं पायसः। वही- ४.३.१

ॐ अश्विभ्यां स्वाहा । इदं अश्विभ्यां इदन्नमम ।

ॐ अश्वयुग्भ्यां स्वाहा । इदं अश्वयुग्भ्यां इदन्नमम ।

ॐ आश्वयुज्यै पौर्णमास्यै स्वाहा । इदं आश्वयुज्यै पौर्णमास्यै इदन्नमम ।

ॐ शरदे स्वाहा । इदं शरदे इदन्नमम ।

ॐ पशुपतये स्वाहा । इदं पशुपतये इदन्नमम ।

ॐ पिङ्गलाय स्वाहा । इदं पिङ्गलाय इदन्नमम ।

इससे भिन्न आश्वलायनगृह्यसूत्र में इस कृत्य के अन्तर्गत शिव, पशुपति तथा शंकर तीनों शिव के परिचायक नामों से आहुतियाँ प्रदान की गई हैं।¹⁹⁴ इनसे शिव का पशुपालन के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध द्योतित होता है। कुछ पाठ भेद के साथ पारस्करगृह्यसूत्र में उक्त कृत्य में चार आहुतियाँ उल्लिखित हैं।¹⁹⁵

‘आ गावो अग्मन्’ सूक्त की प्रत्येक ऋचाके साथ स्थालीपाक की आहुतियाँ करके उस रात्रि को गौमाता के सहित बछड़ों को सम्मिलित करके , अर्थात् उन्हें उस रात्रि को विरक्त नहीं करना चाहिए।¹⁹⁶

इस कृत्य की परिसमाप्ति पर ब्राह्मण भोजन का विधान है।¹⁹⁷ ब्राह्मण भोजन के साथ ही इस कर्म की पूर्णता का संकेत शांखायन तथा पारस्कर ने भी किया है।¹⁹⁸ इस कृत्य की पूर्णता पर ब्राह्मण भोजन का विशेष महत्व है।

¹⁹³ वही- ४.३.२

¹⁹⁴ पशुपतये शिवाय शंकराय पृषातकाय स्वाहा इति । आश्व. गृ.- २.२.२

¹⁹⁵ पा. गृ.- २.१६.२

¹⁹⁶ कौषी. गृ.- ४.३.२

८. वृषोत्सर्ग-

यह कृत्य गौ संवर्धन के निमित्त वृष को विधिपूर्वक खुला छोड़ने के लिए अनुष्ठेय है। कौषीतकगृह्यसूत्र के सदृश अन्य गृह्यसूत्रों में इस कृत्य का उल्लेख मिलता है।¹⁹⁹

वृषोत्सर्ग के सम्पादनकाल के सन्दर्भ में कौषीतकगृह्यसूत्र में निर्देश है कि कार्तिक पूर्णिमा या आश्विन मास में पड़ने वाले रेवती नक्षत्र में यह वृषयज्ञ करना चाहिए।²⁰⁰ इस प्रकार उक्त कृत्य में विहित काल के विषय में अन्यत्र भी संकेत मिलते हैं।²⁰¹ प्रकृतगृह्यसूत्र के अनुसार वृषोत्सर्ग में गायों के मध्य (गायों के बाड़े में) पञ्चभूसंस्कार पूर्वक स्थापित आवसथ्याग्नि को अच्छी प्रकार से प्रज्वलित करके निम्नलिखित मन्त्रसे घी की एक आहुति दी जाती है -

इहधृति स्वधृतिरुपसृजं धरुणं मात्रे धरुणो मातरं धयन् ।

रायस्पोषमिधूर्जमस्मासु दीधरत् स्वाहा”।²⁰²

दूसरी आहुति ‘पूषा गा अन्वेतु नः’ इस मन्त्र से दी जाती है उक्त मन्त्र में निर्दिष्ट है कि पूषा हमारी गायों का अनुगमन करे। अन्य गृह्यसूत्रों में भी इस आहुति को इसी मन्त्र से दिए जाने का कथन है।²⁰³

कौषीतकगृह्यसूत्र²⁰⁴ के अनुसार वृषयज्ञ में होमादि के सम्पन्न हो जाने पर एकरंग, दो रंग अथवा तीन रंग के वृषभ को लेकर या तो गोयूथ का रक्षक अथवा उच्च बलपराक्रम सम्पन्न हो

¹⁹⁷ कौषी. गृ.- ४.३.२

¹⁹⁸ क. शा.गृ.-५.६.४१ ख.पा. गृ.- २.१६६.

¹⁹⁹ क. कौषी. गृ.-३.६ ख. शां. गृ.- ३.११ ग. पा.गृ.-३.९

²⁰⁰ कार्तिक्यां पौर्णमास्यां रेवत्यां आयुज्यां । कौषी. गृ.-३.६.२

²⁰¹ क. शां. गृ.- ३.११.२ ख. पा. गृ.- ३.९.३

²⁰² कौषी. गृ.-३.६.२

²⁰³ क. शां. गृ.- ३.११.५ ख. पा.गृ. -३.९.५

तथा वैकल्पिक रूप से लोहित वर्ण के सर्वाङ्ग सम्पन्न बछड़े का माला आदि से अलंकरण करना चाहिए। इसी प्रकार समूह की मुख्य चार बछियों का भी अलंकरण किया जाता है। इन अलंकृत बछड़े एवं बछियों को निम्नलिखित मन्त्रपूर्वक जंगल में छोड़ दें-²⁰⁵

एतं युवानं परि वौ ददामि तेन कीळतीश्वरत प्रियेण ।

मा नश्शाप्त जनुषा संविदाना रायस्पोषेण समिषा मदेम ॥

अर्थात् यह यजमान यह कामना करते हुए कहता है कि मैं युवक वृषभ पतिरूप में देता हूँ। उस प्रिय के साथ कीड़ा करते हुए तुम विचरण करो, हमारे इस स्थान पर तुम सात जन्म से सम्बद्ध अपने पति से सौभाग्य विहीन न होना और प्रतिफल में हम धनधान्य एवं सुखैश्वर्य सम्पन्न हों। सम्भवतः यहाँ गायों को अर्थात् गो प्रजाति को मनुष्य जन्म के पश्चात् तथा मरणोपरान्त दोनों स्थितियों में उद्धारक माना गया है, क्योंकि व्यवहार में अनिष्ट शान्ति हेतु यज्ञ यागों की पूर्णता पर और मरणासन्न के कल्याणार्थ भी अन्तेष्टि गोदान की प्रथा आज भी है।

प्रकृतगृह्यसूत्र में कहा गया है कि बछियों के मध्य में स्थित उस वृषभ का 'मयोभूर्वातः' अभिमन्त्रण करना चाहिए। ²⁰⁶ अभिमन्त्रण का यह उल्लेख अन्य गृह्यसूत्रों में भी मिलता है। ²⁰⁷

वृषोत्सर्ग के इस कृत्य की सम्पन्नता होने पर जिसके घर में जितनी दुधारु गायें हों उन सबके दूध में खीर पकाकर स्थालीपाक होम करके बाह्मणों को भोजन करवाना चाहिए।²⁰⁸ यही बात

²⁰⁴ कौषी. गृ.-३.६.३ ८.

²⁰⁵ कौषी. गृ.-३.६.९

²⁰⁶ कौषी. गृ.- ३.६.१०

²⁰⁷ क. शां. गृ.- ३.११.१५ ख. पा. गृ.- ३.९.७

²⁰⁸ कौषी. गृ.- ३.६.११

पारस्कर ने भी कही है।²⁰⁹ ब्राह्मण भोजन यज्ञ की पूर्णता का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसलिए बार-बार इन धार्मिक कृत्यों की सम्पन्नता पर ब्राह्मण भोजन की ओर इंगित करना गृह्यसूत्रकार अपना कर्तव्य समझते हैं।

९.गवानुमन्त्रणादि –

प्रकृत गृह्यसूत्र में आग्रयण कर्म के अन्तर्गत ही गवाङ्कन कर्म का निर्देश है।²¹⁰ जिसमें गौओं के पुट्टों को दागना या चिन्हित किया जाना लक्षित है।

यह कृत्य कब सम्पादित किया जाना चाहिए? इस विषय में कौषीतक गृह्यसूत्र का मन्तव्य है कि रेवती चैत्री अमावस्या फाल्गुन मास की पूर्णिमा के उपरान्त जो अमावस्या नक्षत्र से युक्त होती है उसी अमावस्या के दिन गौओं पर चिह्न बनाने चाहिए।²¹¹ यहाँ यह कल्पना प्रतीत होती है कि चैत्री अमावस्या रेवती नक्षत्र युक्त होती है। वास्तव में चैत्री अमावस्या संवत्सर का अन्तिम दिन होता है जिस पर गहनता से विचार करते हुए कई वर्षों के पञ्चाग अवलोकन से यह सिद्ध होता कि चैत्री अमावस्या अधिकतर रेवती नक्षत्र से युक्त न हो कर पूर्वाभाद्रपदा, उत्तरा भाद्रपदा या फिर अश्विनी नक्षत्रों में होती है अथवा कभी रेवती से युक्त। अतः अनुकूल समय में उक्त कर्म करना चाहिए। गवाङ्कन करते हुए कर्ता को ऐसा कथन करना चाहिए -

भुवनमसि सहस्रमसि रायस्पोषं मा वो दधत् ।

अक्षतमस्यरिष्टं विराळन्नं गोपायति ।

यावतीनामिदं करिष्यामि भूयसीनामुत्तरासां क्रियासम् ॥

²⁰⁹ पा. गृ. - ३.९.८

²¹⁰ कौषी. गृ.- ३.५.९

²¹¹ या फाल्गुण्या उत्तरामावास्या सा रेवत्या सम्पद्यते तस्याङ्ग लक्षणानि कारयेत् । कौषी. गृ.- ३.५.९

अर्थात् सहस्रधा वृद्धिगत आप भुवन हैं। इन्द्र को आप आश्रय हैं। आप अक्षत, अरिष्ट तथा इलान्न हैं। जितनी गायों का इस समय मैं अङ्कन कर रहा हूँ इसके पश्चात् संवत्सर में और अधिक करूँ।²¹² गवाङ्कन के सन्दर्भ में अन्यत्र भी उल्लेख मिलता है कि किसी अयस्कार यह कृत्य करते हुए एक पुट्टे पर चक्र का और दूसरे पर त्रिशूल का चिन्ह लगाना चाहिए। साथ ही यह भी कहा गया है कि अयस्कार को मुंह माँगा पुरस्कार देना चाहिए। तथा कम से कम तीन ब्राह्मणों को घृतपक्क अन्न खिलाना चाहिए²¹³ इस कृत्य से ऐसा लगता है कि प्राचीनकाल में गवाङ्कन का अत्यधिक महत्व था और यह पुण्य कार्य समझा जाता था। अद्यावधि यह विधि प्रायः लुप्त हो गई है। वैदिक काल में गाय यदि जुड़वाँ बच्चों को जन्म देती थी तो सम्भवतः यह अपशकुन माना जाता था। इस स्थिति में प्रायश्चित्त करने के उद्देश्य से महाव्याहृतियों ॐ भू, भुवः, स्वः से होम किया जाता था तथा जुड़वाँ बच्चे उत्पन्न करने वाली गाय को ब्राह्मण को दान कर दिया जाता था।²¹⁴

१०. आग्रहायणी -

आग्रहायणी कर्म एक वार्षिक पाकयज्ञ है। जिसकी पुष्टि गौतम द्वारा कहे गए चालीस संस्कारों की परिगणना में, सात पाकयज्ञों में से एक पाकयज्ञ के रूप में हुई है।²¹⁵ कौषीतक²¹⁶ तथा अन्य गृह्यसूत्रकारों²¹⁷ ने इस कृत्य का उल्लेख किया है।

²¹² कौषी. गृ. - ३.५.९

²¹³ धर्म. इति., भाग- ३, (वामन काणे), पृ.- १२९१

²¹⁴ कौषी. गृ.- ३.५.१०

²¹⁵ गौ. धर्म.- ८.१९

²¹⁶ कौषी. गृ. - ४.४

²¹⁷ क. खा. गृ.- २.३ ख. शां. गृ.- ४.१६

यह वह कृत्य है जिसके द्वारा मार्गशीर्ष की पूर्णमासी को पर्यंक या खाटों से उतरकर भूमि शयन प्रारम्भ किया जाता है।²¹⁸ कौषीतकगृह्यसूत्र²¹⁹ के अनुसार श्रावणी कर्म श्रावण महीने की पूर्णिमा से लोग भूमि शयन का परित्याग कर देते हैं प्रत्युत श्रावण मास से पूर्व आषाढ मास से ही बरसात के प्रभाव से आग्रहायणी कर्म पर्यन्त भूमि पर नाना प्रकार के विषेले कीड़ों का भय बना रहता है इसके कारण ही श्रावणी से खाट पर शयन आरम्भ किया जाता है एवं पुनः आग्रहायणी से उत्तरोत्तर बढ़ते हुए शीतऋतु के प्रभाव से भूमि शयन सुखद एवं अनुकूल माना जाता है क्योंकि उस समय शीत के प्रकोप से विषेले जीवों का भय नहीं रहता ।

कौषीतकगृह्यसूत्र में आग्रहायणी कर्म के विषय में विधान है कि रोहिणी नक्षत्र अथवा पूर्वाभाद्रपदा एवं उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र में प्रातःकाल-शमीपत्र, पलाश, महुआफल, अपामार्ग, शिरीष, उदुम्बर, कुशतरुण तथा बेर की आदि से सब एक मुष्टि प्रमाण लेकर तत्पश्चात् हल के फाले से फलदार पौधे के मूल फल से निकली मिट्टी की एक मुट्ठी सब पदार्थों को जल कुम्भ में स्थापित कर देने का निर्देश है।²²⁰ वास्तव में उपर्युक्त परिगणित समस्त वनस्पतियों शमीपत्र, पलाश, महुआफल, अपमार्ग आदि को वैदिक ग्रन्थों एवं आयुर्वेद ग्रन्थों में विविध अनिष्टों के उपशामक माना गया है ।

तत्पश्चात् उपर्युक्त वनस्पतियों से निर्मित घोल को तैयार करके 'अप नः शोशुचदघम' क्रम सूक्त का पाठ प्रदक्षिणा करते हुए दाएं से बाएं घूमते अपनी शरण में आये हुए लोगों का

²¹⁸ आग्रहायण्यां प्रत्यवरोहेत् । कौषी. गृ. - ४.४.१

²¹⁹ कौषी. गृ. - ४.४.१८

²²⁰ कौषी. गृ. - ४.४.५-६

अभिषेक द्वारा पापोशमन करता है²²¹ वनस्पतियों से निर्मित घोल का 'अप नः शोशुचदघम्' सूक्त पाठ सहित घर में किया गया अभिषेक विधान है। इस यज्ञ की दक्षिणा मधुपर्क है।²²²

आग्रहायणी कर्म सम्पादित हो जाने के अनन्तर भूमि शयन प्रारम्भ किया जाता है। भूमि शयन प्रारम्भ किया जाए इससे पूर्व विषयुक्त जीवों के भय आदि के अनिष्ट की आशंका हेतु होम किया जाता है। प्रकृत गृह्यसूत्र में घृत आहुतियों के लिए अपेक्षित छः मन्त्र इस प्रकार हैं²²³

ॐ ग्रीष्मो हेमन्त उत नो वसन्तश्शरद्वर्षास्सुवितं नोऽस्तु ।

तेषां पशूनामृतूनां शतशारदानां निवात एषाम भये श्याम स्वाहा।

ॐ अप श्वेतपदा जहि पूर्वेण चापरेण च ।

सप्त च वारुणीरिमास्सर्वाश्च राजबान्धवै स्वाहा।

ॐ श्वेताय वैदर्भाय स्वाहा।

ॐ विदर्भाय स्वाहा।

ॐ तक्षकाय वैशालेयाय स्वाहा।

ॐ विशालाय स्वाहा।

होम सम्पन्न हो जाने के पश्चात् निम्न प्रार्थना मन्त्र के साथ इस कर्म की पूर्णता हो जाती है-

सुहेमन्तः सुवसन्तः सुग्रीष्मः प्रतिभूषन्ताम् ।

सुवर्षाः सन्तु नो वर्षाः शरदः शं भवन्तु नः॥²²⁴

²²¹ कौषी. गृ.- ४.४.६

²²² उत्तरतो..... दक्षिणा । कौषी. गृ.- ४.४.७-८

²²³ कौषी. गृ.- ४.४.९

इसमें प्रार्थना की गई है कि हमें यह समस्त ऋतुएं क्रमशः हेमन्त, बसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद एवं शिशिर सदैव कल्याणकारी हों तथा नववर्ष के शुभारम्भ में इस प्रकार की प्रार्थना प्रायः सम्यक् प्रतीत होती है।

भूमि समस्त प्राणियों की आश्रयदाता है। भूमि माता से, भूमिशयन से पूर्व मङ्गल कामना करते हुए ही प्रकृत गृह्यसूत्र में 'स्योना पृथिवी भव' का उच्चारण कहा गया है।²²⁵ कतिपय गृह्यसूत्रों में उक्त मन्त्र परिवार के समस्त सदस्यों को भूमि आस्तृत शय्या पर शयन करते हुए पढ़ने का निर्देश है।²²⁶ भूमि अभिमन्त्र के बाद पलाश शाखा द्वारा भूमि सम्मार्जन सब प्रकार के मङ्गल कामना के पूरक मन्त्र 'शं नो भवन्तु वाजिनः' से करना चाहिए।²²⁷ गृह्यसूत्र में उक्त मन्त्र के स्थान पर 'शं नो मित्रः शं वरुणः' मन्त्र का उल्लेख है। जिसमें मित्र प्रभृति छः देवों से कल्याण की कामना की गई है।²²⁸

भूमि सम्मार्जनान्तर भूमि शुद्धि हेतु जलाभिषेक करते हुए 'समुद्रादूर्मिः' का पाठ करना चाहिए।²²⁹ इस प्रकार विधिवत् भूमि सम्मार्जन प्रार्थना एवं जलाभिषेकादि से परिशोधित पृथिवी पर शय्या बिछाकर समस्त कौटुम्बिक जन ज्येष्ठ व्यक्ति को दाहिने करके पार्श्व में स्थान ग्रहण करते हैं।²³⁰ तदनन्तर प्रकृतगृह्यसूत्र में उल्लिखित है कि शय्या पर बैठे कौटुम्बिक इस प्रकार अभिव्यक्ति करते हैं कि मैं अपने को बह्म तथा यज्ञ में स्थापित करता हूँ, अश्वों तथा क्षत्र

²²⁴ कौषी. गृ.- ४.४.१०

²²⁵ कौषी. गृ.- ४.४.१०

²²⁶ क. आ. गृ. २.३.६ ख.पा.गृ.- ३.२.१३

²²⁷ कौषी. गृ. ४.४.१०

²²⁸ शां. गृ. ४.१८.३

²²⁹ कौषी गृ. ४.४.१०

²³⁰ कौषी. गृ. ४.४.१०

में स्थापित करता हूँ। इन शब्दों से दक्षिण की ओर तथा बायीं ओर यह कथन करता है कि मैं अपने अन्न को पशुओं एवं अन्न आदि में स्थापित करता हूँ।²³¹ शांखायनगृह्यसूत्र में इस कृत्य के इस अंश में कुछ भिन्नता द्रष्टव्य है।²³²

तत्पश्चात् उपर्युक्त विधि पूर्ण होने पर वे उस रात्रि के उसी आस्तरण पर शयन करते हैं।²³³ वैदिक काल में सो कर उठते हुए वैदिक नक्षत्रों का उच्चारण किया जाता था। इस साक्ष्य के सन्दर्भ में कौषीतक गृह्यसूत्र में 'उदीर्ध्व जीवः' मन्त्र उल्लिखित है, जिसे बोलते हुए प्रातः काल उठा जाता है तथा शय्या का सुखपूर्वक परित्याग करते हुए 'नमो मित्रस्य' मन्त्र का उच्चारण खड़े होकर करना चाहिए।²³⁴ यहाँ विकल्प है कि इस कृत्य की विधि पूर्ण हो जाने पर शयन कर्ता यदि चाहे भूमि पर शयन करें या खाट पर। यदि शयनकर्ता खाट पर ही शयन अनुकूल समझता है तो वह 'सुत्रामाणम्' प्रारम्भ करता है अर्थात् शय्या रोहण करता है।²³⁵ आग्रहायणी कृत्य की सांगोपाङ्ग विधि के परिज्ञान से ऐसा प्रतीत होता है कि प्राचीन काल में लोग वैदिक जीवन शैली पर पूर्णतः आधारित थे।

²³¹ कौषी. गृ. ४-११ ४.१५

²³² शां. गृ.- ४.१८-७.१०

²³³ प्रस्तरे तां रात्रिं शेरते। कौषी. गृ. -४.४.१६

²³⁴ कौषी. गृ.- ४.४.१७

²³⁵ कौषी. गृ.- ४.४.१८

द्वितीय अध्याय

आभ्यन्तरादि भेदों सहित वैदिक स्मार्तयज्ञों का विशिष्ट अनुष्ठानक्रम

जीवन ही यज्ञ है जो कि निरन्तर चल रहा है जो कभी पृकृति के प्रत्यक्ष दृष्टि से अनुभूत करते हैं किन्तु उससे भी परे और सर्वदा आनुभविक यज्ञ हमारे शरीर में ही घटित होते रहते हैं जिनको हम नजरअंदाज कर बैठते हैं यहाँ उनको समझने का प्रयास करते हैं -

२.१ आभ्यन्तर यज्ञ-

- जपयज्ञ- आसन लगाकर एकाग्रचित परमात्मा के नामों को जपना जप यज्ञ है।
- ज्ञानयज्ञ- परमात्मा सम्बन्धी ज्ञानार्जन करना ज्ञान यज्ञ है।
- तपयज्ञ- परमात्मा के निमित्त शरीर को तपाना तप यज्ञ है।
- योगयज्ञ- अपनी आत्मा को परमात्मा से जोड़ना योग यज्ञ है।
- ध्यानयज्ञ- नित्य परमात्मा का ध्यान अथवा चिन्तन करना ध्यान यज्ञ है। इस प्रकार यथा सम्भव कुछ प्रमुख यज्ञों के स्वरूप का संक्षिप्त वर्णन किया है।

यज्ञ के पाँच प्रमुख अङ्ग होते हैं- १.देवता, २. द्रव्य, ३.मन्त्र, ४.ऋत्विज्, ५.दक्षिणा। इनके अभाव में यज्ञ का सम्पादन ठीक ढंग से नहीं किया जा सकता है। देवताओं की दिव्यता सम्पन्नता के आधार पर देवताओं के तीन वर्ग होते हैं। प्रथम वर्ग अजान् देवताओं के तथा दूसरा वर्ग भी अजान् देवताओं के ही है, और तीसरे वर्ग में कर्म-देवताओं के नाम आते हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, सूर्य चन्द्रमा, और ग्रह नक्षत्र आदि से प्रथम व द्वितीय वर्ग के अजान देवता हैं। सृष्टि के समय में ही सृष्टि के नियंत्रण और संचालन के लिए परमेश्वर से उत्पन्न हुए हैं। जो वैदिक कर्म यज्ञ अनुष्ठान के पुण्य से देवत्व को प्राप्त हो गये वे कर्म देवता कहलाते हैं।²³⁶ जैसे दिव्य पितर और मरुद्गण और ये ही पुनः कर्म देवता के पुण्य प्रभाव से तथा अजान देवता की

²³⁶ क्र.सं. ५/३५/८

कृपा से दिव्य उन्नति को प्राप्त हुए हैं वे ही आजान देवता होते हैं या इन्द्र कुबेर आदि। अतः यज्ञ के प्रमुख अंगों का वर्णन निम्न है।

१.देवता-

देवता अलौकिक शक्ति सम्पन्न होते हैं तथा अनेक अभीष्ट पदार्थों को प्रदान करने वाले हैं। देवता यज्ञ के प्रथम अङ्ग है। यज्ञ के निमित्त का विशेष महत्व है। एक देवता अनेक रूपों में विभक्त होते हैं। समस्त देवताओं की एक ही आत्मा होती है। जैसा कि निरुक्त के दैवतकाण्ड में वर्णित हैं।²³⁷ निरुक्त देवता यज्ञ से ही तृप्त होते हैं और समस्त प्राणियों का कल्याण करते हैं।²³⁸ देवता का तात्पर्य देने वाला है। ये यज्ञ के द्वारा ही यजमान को अभीष्ट भोज्यार्थ पदार्थों को प्रदान करते हैं। अतः देवता यज्ञ के अभिन्न अङ्ग हैं। इनके अभाव में कोई भी यज्ञ सम्पन्न नहीं किया जा सकता है।

२.द्रव्य-

यज्ञ में देवताओं को प्रसन्नता के लिए अग्नि में जो वेदविहित पदार्थ अर्पण किया जाता है, उसे हविर्द्रव्य कहते हैं। जैसे आज्य²³⁹, चरू²⁴⁰, पुरोडाश, तिल, चावल और सोमरस आदि। अग्नि में दिया हुआ हविर्द्रव्य देवता अमृत रूप में प्राप्त करते हैं। यही देवताओं का आधार है। जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है।²⁴¹

इतःप्रदानाद्धि देवा उपजीवन्ति। तदन्नं होमान् जुहोति

३.मन्त्र-

²³⁷ निरुक्त - ७२

²³⁸ क. देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः ।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ ॥

ख. इष्टान्भोगान्ति वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः।

तैर्दत्तान्प्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः॥

भ. गी. - ३.११-१२

²³⁹ घृत, तेल, दूध, दही अथवा आधे भूने या पके हुए जौ आदि यज्ञ संस्कार सम्बन्धी क्रिया होने से इन सबको आज्य कहते हैं।

²⁴⁰ यज्ञ के निमित्त पके हुए भात को चरू कहते हैं।

²⁴¹ शत.ब्रा. १३.२.११

मन्त्र को ही यज्ञ का तीसरा अङ्ग मानते हैं। वैदिक रीति से मन्त्रों के अनुष्ठान से देवता प्रसन्न होते हैं और यजन कर्ता तथा यजमान को अभीष्ट फल प्रदान करते हैं। यज्ञ में मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण के प्रभाव से अनिष्ट का निवारण और कल्याण की प्राप्ति होती है। मन्त्रों के अशुद्ध उच्चारण से यजमान को अनिष्ट फल की प्राप्ति होती है। जैसा कि महाभाष्य में महर्षि पतञ्जलि ने कहा है।²⁴²

दुष्टः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।

स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥

अभिषेक, अर्चन, हवन आदि में मन्त्र के वर्ण का उच्चारण इस प्रकार से करना चाहिए जिससे वह स्वयं को सुनाई दे। नासिका से श्वास छोड़ने में अथवा मुख से श्वास लेने में जितना समय लगता है उतना ही समय वर्ण के उच्चारण में लगाना चाहिए। वैदिक मन्त्रों में सर्व प्रथम 'ॐ' का उच्चारण करना चाहिए। हवनादि के समय सभी मन्त्रों के अन्त में 'स्वाहा' कहकर उच्चारण करना चाहिए। उदाहरण के लिए 'ॐ अग्नये स्वाहा' इस प्रकार से मन्त्रों का उच्चारण करना चाहिए।

४. ऋत्विज-

वेदोक्त कर्म और विभिन्न याग विधि के सम्पादन में कुशल ब्राह्मण ही ऋत्विज होता है। अर्थात् दक्षिणा लेकर यजमान के लिए यज्ञ अनुष्ठान करने वाला ब्राह्मण ही ऋत्विज कहलाता है। जो यज्ञ करने वाले ब्राह्मण हैं, उन्हें ऋत्विज कहते हैं।²⁴³ जैसा कि ऐतरेय ब्राह्मण में कहा गया है।²⁴⁴ 'ऋत्विजि हि सर्वो यज्ञः प्रतिष्ठितः' इसी प्रकार पारस्कर गृहसूत्र में वर्णित है²⁴⁵ कि- जो दक्षिणा लेकर श्रौत-स्मार्त कर्मों को करता है उसे ऋत्विज कहते हैं। इसी तरह मनुस्मृति में भी उल्लेख किया गया है²⁴⁶ कि- "जो यजमान के प्रेरणानुसार अग्न्याधान, पाकयज्ञ तथा

²⁴² म.भाष्य.पस्पशानिक

²⁴³ ये च यज्ञं करा विप्राय ऋत्विज इति स्मृताः। पद्मपुराण सृष्टि खण्ड ४.१७.८२

²⁴⁴ ऐतरेय ब्राह्मण- ९.८

²⁴⁵ यो दक्षिणादिना परिक्रीतः श्रौत-स्मार्तादीनि कर्माणि करोति स ऋत्विक्। पारस्कर गृहसूत्र-विवृत्तिटीका

²⁴⁶ अग्न्याधेयं पाक यज्ञाननिष्ये मादिका जमखान्। यः करोति वृतो यस्य सतस्यविगिहोण्यते॥मनु.२.१४३

अग्निष्टोमादि यज्ञों को आचार्यत्व पूर्वक करता है, वह यजमान का ऋत्विज कहलाता है।” होता, अध्वर्यु, ब्रह्मा, उद्गाता ये चार ऋत्विज ऋगादि चारों वेदों से सम्बन्धित होते हैं। सोमयाग में प्रत्येक का एक-एक गण होता है, प्रत्येक गण में चार ऋत्विज होते हैं। इस प्रकार से सब मिलाकर ऋत्विजों की संख्या सोलह होती है। यद्यपि जो यजन करता है, उसे ही फल की प्राप्ति होती है। अतः फलार्थी यजमान को स्वयं ही यज्ञ कर्म करना चाहिए या उसकी अनुपस्थिति में उसके प्रतिनिधि को किसी अन्य के यज्ञ सम्पादन में कर्तुं विभाग के कारण फल विभाग की आपत्ति भी उपस्थिति हो जाती है। अतः यजमान फल प्राप्ति के लिए (ऋत्विक्) को दक्षिणा देकर फल की प्राप्ति करता है। अतः यजमान के द्वारा वरण किये हुए दक्षिणा क्रीत पुरुष महायज्ञों में दो तरह के होते हैं ऋत्विज् आर अनृत्विज्। इसमें वरणीय ऋत्विग् ब्राह्मण ही होना चाहिए। क्षत्रिय या वैश्य नहीं, क्योंकि महायज्ञों में ऋत्विजों को यज्ञोच्छिष्ट इडा- प्राशित्र भक्षण करना पड़ता है। और इसमें क्षत्रिय एवं वैश्य को प्रतिषेध माना गया है। अतः यज्ञ में ऋत्विज् ब्राह्मण ही होना चाहिए।

५. दक्षिणा-

वैदिक साहित्य में दक्षिणा की समानता यज्ञ पत्नी से की गई है। यज्ञ के अन्त में ऋत्विजों को गाय, स्वर्ण, रजत और अन्नादि जो दिया जाता है, उसे दक्षिणा कहते हैं। दक्षिणा रहित यज्ञ निष्फल होता है। स्मृति के अनुसार दक्षिणा रहित यज्ञ की कल्पना नहीं की जा सकती है। अतः देवी भागवत् महापुराण में कहा गया है²⁴⁷ कि दक्षिणा से युक्त यज्ञ पुत्ररूप फल के साथ कर्म कर्ता यजमान को फल प्रदान करता है। ऐसा वेद को जानने वाले पुरुष जानते हैं। अतः यज्ञ में दक्षिणा का विशेष महत्व है, जैसा कि ऋग्वेद में वर्णित है²⁴⁸ कि ब्राह्मणों को दक्षिणा देने वाले मनुष्य अमरता और दीर्घायु को प्राप्त करते हैं। ताण्ड्यब्राह्मण में दक्षिणा को यज्ञ का शुभ-कर्म²⁴⁹

²⁴⁷ यज्ञो दक्षिणया साधं पुत्रेण च फलेन च। कर्मिणां फलदाता चेत्येवं वेदविदोविदुः ॥ देवीभा. महा.- ९.४५.५०

²⁴⁸ दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते दक्षिणावन्तः प्रतिरन्त आयुः। ऋक्. - १.१२५.६

²⁴⁹ शुभो वा एता यज्ञस्य यदक्षिणाः। ताण्ड्य ब्रा. - १६.१.१४

माना गया है। शतपथ ब्राह्मण में यज्ञादि में चार प्रकार की दक्षिणा कही गई है।²⁵⁰ स्वर्ण, गौ, वस्त्र और घोड़ा।

अतः इस प्रकार से दक्षिणा यज्ञ का एक अभिन्न अङ्ग है। दक्षिणा के बिना यज्ञकर्ता यजमान यज्ञ फल को नहीं प्राप्त कर सकता है। दक्षिणा एक ऐसी याज्ञिक वस्तु है जिसमें यज्ञ की सम्पूर्ण शक्ति निहित रहती है। अतः दक्षिणादि यजमान के समस्त अभिलाषाओं को पूरा करने में समर्थ है। इसलिए दक्षिणा को फलप्रद कहा है 'यज्ञे दक्षिणा फलप्रदा भवति'। यज्ञादि कर्मों में दक्षिणा की विशेष आवश्यकता होती है क्योंकि यदि यज्ञादि कर्मों में यजमान से किसी प्रकार की त्रुटि होती है तो उस त्रुटि का निवारण दक्षिणा देने से ही होता है। जैसा कि निरुक्त में वर्णित है।²⁵¹ 'दक्षिणा दक्षतेः समर्थयति कर्मणः वृद्धिं समर्थयतोति' अर्थात् यज्ञ में प्रमादवश जो कुछ कमी रह जाती है। दक्षिणा उसकी वृद्धि कर पूर्ण कर देती है। जैसा कि ब्रह्मवैवर्त पुराण में दक्षिणा का महत्व यज्ञादि कर्म में इस प्रकार बताया गया है²⁵² अतः कल्याण चाहने वाले यजमान को यज्ञ के अन्त में ब्राह्मणों को प्रचुर मात्रा में दक्षिणा देकर सन्तुष्ट करना चाहिए। साम्बपुराण में तो स्पष्ट कहा गया है कि समस्त यज्ञों में ब्राह्मणों को दक्षिणा देना आवश्यक कर्म है। अतः कल्याण चाहने वाले के लिये दक्षिणा मूल आधार है।

२.२ यज्ञ अनुष्ठान सम्बन्धी कुछ नियम की अवधारणाएँ-

यज्ञ अनुष्ठान के लिए याज्ञिक नियमों का पालन करना अति आवश्यक है। अतः प्रत्येक याज्ञिक को सफलतम् यज्ञ करने के लिए यज्ञ अनुष्ठान सम्बन्धी नियमों का पालन करना चाहिए।

हवन कर्म में ब्रह्म का आसन-

रेणुकारिका ग्रन्थ के अनुसार ब्रह्म का आसन् वारण अथवा विकङ्कत काष्ठ का एक हाथ का चौकोर बनाना चाहिए जैसा कि रेणु कारिका में कहा गया है।²⁵³ "आसनं ब्रह्मणः कार्यवारणं वाविकङ्कतम् । चतुरस्रं हस्तमात्रं मूलदण्डसमन्वितम्॥" महर्षि हारीत ने ब्रह्मा के अभाव में कुश ग्रन्थियों से बने ब्रह्मा का विकल्प दिया है। छान्दोग्य उपनिषद् के गृह्यसूत्र में वर्णित है कि 'कुश ग्रन्थिमयं विप्रं ब्रह्माणमुपशयेत् ॥ पञ्चाशद्विः कुशैःकौशः ब्रह्मकार्यो मखेसदा' ।(छान्दोग

²⁵⁰ ततस्रो दक्षिणाः। हिरण्यगो वासोऽश्वः। शत. ब्रा. - ४.३.४७७

²⁵¹ निरुक्त- १.३.७

²⁵² ब्रह्मवैवर्तपुराण- गणपति खण्ड-७२३

²⁵³ रेणुकारिका से उद्धृत

गृह्य.) अर्थात् यह ब्रह्म पचास कुशों का बनाना चाहिए। यह व्यवस्था स्मार्त यज्ञों के लिए उपयोगी है।

२.४ यज्ञ कुण्डों के प्रकार-

स्मार्त-श्रौत कर्मानुष्ठान में कुण्ड के आठ अङ्ग होते हैं स्थान, मान, क्षेत्र, खात्, नाभि, ओष्ठ मेखला और योनि। जैसा कि धर्म-कर्म-सर्वस्वम् में वर्णित है।

स्थानं मानं क्षेत्र खातो नाभ्योष्ठ- मेखला योनिः

इत्यष्टाङ्गं कुण्ड भवतिस्मार्तस्य कर्मणः सिद्धये च ॥

बह्वृच परिशिष्ट में भी एवं उल्लेख प्राप्त है -

भुक्तौ मुक्तौ तथा पुष्टौ जीर्णोद्दारे विशेषतः।

सदा होमे तथा शान्तौवृत्तं वरुणदिग्- गतम्॥

अतः ग्रन्थों में आकार भेद से दस प्रकार के कुण्डों का विधान मिलता है। चौकोर, त्रिकोण, पञ्चकोण, षट्कोण, सप्तकोण, अष्टकोण, पद्माकार, गोलाकार, अर्धचन्द्राकार और योन्याकार विभिन्न यज्ञ अनुष्ठान में इस प्रकार से इनका उपयोग होता है- पुत्रेष्टि में योनिकुण्ड, शुभ कर्मों में अर्धचन्द्र, शान्ति कर्म में गोलाकार कुण्ड, पुष्टि प्रयोग में पद्मकुण्ड, रोग शान्ति के लिए अष्टकोण, अभिचार शान्ति में सप्तकोण, मारण-छेदन में षट्कोण, भूत समुत्सादन में पञ्चकोण, और शत्रुशमन में त्रिकोण कुण्ड बनाना चाहिए। चौकोर कुण्ड सर्वार्थ सिद्धिप्रद माना गया है। इस नियम से प्रधान वेदी न बनाकर जहाँ केवल एक ही कुण्ड बनाया जाता है वहीं यह नियम लागू होता है। प्रधान वेदी के साथ कुण्ड बनाने पर वेदी के अनुसार ही दिशा भेद से विशेष- विशेष प्रयोगों में उनका उपयोग होता है। इसके अनुसार शत्रुस्तम्भ करने के कर्म में वेदी के पूर्वदिक् में चौकोर कुण्ड बनाना चाहिए। भोगार्थ अग्निकोण में योनिकुण्ड, शत्रुमारण में दक्षिण दिशा में अर्ध चन्द्राकार कुण्ड, विद्वेषण-कार्य के लिए नैऋत्य कोण में त्रिकोण कुण्ड और शान्ति कर्म में पश्चिम दिशा में गोलाकार कुण्ड बनाने का विधान है। इस प्रकार से उच्चाटन कार्य

में वेदी से वायु कोण में षट्कोण कुण्ड, पुष्टि कर्म के लिए उत्तर में पद्माकार और मोक्ष के लिए ईशान कोण में अष्टकोण कुण्ड बनाना चाहिए। बह्वृचपरिशिष्टा ग्रन्थों में वेदी से पश्चिम में इस गोलाकार कुण्ड का विभिन्न अनुष्ठानों में भी प्रयोग बताया गया है। उसमें वर्णित है कि भुक्ति, मुक्ति, पुष्टि, शान्ति तथा विशेष रूप से जीर्णोद्धार में वेदी से पश्चिम दिशा में हवन कुण्ड बनाना चाहिए। इस प्रकार कामना भेद से एक-एक कुण्ड वेदी से उपर्युक्त निश्चित दिशा में बनाया जाता है। अतः सर्व कामना पूर्ति के लिए यजमान को नवकुण्डी कुण्ड बनानी चाहिए। अनेक शास्त्रों व पुराणों में भिन्न-भिन्न मत है। कुछ अन्य शास्त्रों में वर्ण भेद के आधार पर कुण्ड निर्माण का विधान मिलता है। जैसे- ब्राह्मण के लिये चतुरस्र , क्षत्रिय के लिए गोलाकार, वैश्य के लिये अर्धचन्द्राकार, शूद्र के लिये त्रिकोण कुण्ड कहा गया है। यदि स्त्री यज्ञ करें, तो उसके लिये योनि अथवा चतुरस्र कुण्ड कहा गया है।

२.५ यज्ञकुण्ड निर्माण के लिए उचित स्थान-

ये सभी प्रकार के कुण्ड वेदी से तेरह अंगुल के अन्तर पर बनाये जाते - यह मत विधान परिजात में वर्णित है। अन्यत्र वेदी से पदमात्र बारह अंगुल के अन्तर का विधान मिलता है। विधान परिजात के अनुसार-

त्रयोदशाङ्गुलं त्यक्त्वा वेदिकायाश्चतुर्दिशम् ॥

कुण्डानि गणनोक्तानि विदध्याद् विधिवद् गुरुः॥

(विधान परिजात)

वेदी के मध्यस्थान से आठों दिशाओं में आठ रेखायें करके उन-उन रेखाओं में उन-उन कुण्डों के मध्य भाग की कल्पना कर कुण्ड निर्माण करना चाहिए। जिससे कि दिग्विरोध न हो। आधुनिक समय में कुछ लोग कुण्ड के बिना ही वेदी पर ही हवन करते हैं। और कुछ लोग वेदी के बिना कुण्ड मात्र से हवन की व्यवस्था बताते हैं। इस प्रकार के आचार्यों के अनुसार यज्ञ मण्डप में वेदी के स्थान पर ही कुण्ड बना लिया जाता है। किन्तु कुण्ड निर्माण के लिए दिक् आदि पर विशेष ध्यान देना चाहिए। जैसा कि अग्निपुराण में कहा गया है।²⁵⁴

²⁵⁴ अग्निपुराण- ३४.३६-३७

प्राच्यां शिरः समाख्यातं बाहूकोणे व्यवस्थितौ ॥

ईशानाग्नेयकोणे तु जङ्घे वायव्यनैर्ऋते॥

उदरं कुण्डमित्युक्तम् योनिर्योनिर्विधीयते।

अर्थात् कुण्ड का पूर्व दिशा में सिर कहा गया है, ईशान और अग्निकोण में उसकी दो भुजाएँ कही गई हैं, वायव्य और नैर्ऋत्य कोण में दो जङ्घायें कहीं गई हैं, कुण्ड उसका उदर (पेट) कहा गया है और कुण्ड की योनि उसकी योनि कही जाती है। इसी प्रकार से अग्निपुराण में वर्णित है-

कुण्डमध्ये ऋतु मतीं लक्ष्मीं सञ्चिन्त्य होमयेत्॥

कुण्ड लक्ष्मीः समाख्याता प्रकृतिस्त्रिगुणात्मिका॥

सायोनिः सर्वभूत तानां विद्यामन्त्र गणस्य च ॥

विमुक्तेः कारणं वह्निः परमात्मा च मुक्ति दः॥

इसी तरह शारदा तिलक में वर्णित है-²⁵⁵

कुण्ड स्वरूपं जानीयात् परमं प्रकृतेर्वपुः ॥

प्राच्यांशिरः समाख्यातं बाहू दक्षिणसौम्ययोः॥

उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिः पादौतु पश्चिमे॥

अतः कुण्ड के स्वरूप को प्रकृति का परम शरीर जानना चाहिए पूर्व दिशा में उसका सिर कहा गया है। दक्षिण उत्तर में उसके दो बाहू कहे गये हैं। कुण्ड उदर कहा गया है। योनि और पैर पश्चिम में कहे गये हैं। इस प्रकार से कुण्ड निर्माण में दिक्-स्थानादि का विशेष विचार करना चाहिए।

२.६ कुण्ड विस्तार का परिमाण-

²⁵⁵ शारदातिलक- ३.९०-९१

कुण्ड का विस्तार पूर्णरूपेण आहुतियों पर निर्भर करता है। कितनी आहुतियों के लिए कितना बड़ा कुण्ड होना चाहिए? इस विषय में अनेक विद्वानों के भिन्न-भिन्न मत हैं। एक मत के अनुसार दश आहुति वाले हवन में बारह अङ्गुल, पचास आहुतियों वाले हवन में रत्नि प्रमाण इक्कीस अङ्गुल, सौ आहुतियों वाले हवन में अरत्नि मात्र बाईस अङ्गुल, एक हजार आहुतियों वाले हवन में हस्तमात्र चौबीस अङ्गुल, दस हजार आहुतियों वाले हवन में दो हाथ, पचास हजार आहुतियों वाले हवन में तीन हाथ, एक लाख आहुतियों वाले हवन में चार हाथ, दस लाख आहुतियों वाले हवन में छः हाथ, पचास लाख आहुतियों वाले हवन में सात हाथ और एक करोण आहुतियों वाले हवन में आठ हाथ कुण्ड का विधान है। यज्ञ के महान सम्राट वेणी राम शर्मा जी ने अपने ग्रन्थ यज्ञ-मीमांसा में आहुतियों के हिसाब से कुण्ड का विस्तार मान इस प्रकार से वर्णित किया है।²⁵⁶

५० से कम आहुति में कुण्ड निर्माण नहीं होता किन्तु स्थण्डिलका²⁵⁷ प्रयोग किया जाता है। ५० से ९९ तक आहुति में २१ अङ्गुल का या बँधी हुई मुट्ठी भर हाथ का कुण्ड होता है। १०० से ९९९ तक आहुति में २२½ अङ्गुल (अरनि मात्र) का कुण्ड होता है। १००० (एक हजार) आहुति में एक हाथ का कुण्ड होता है। १०००० (दस हजार) आहुति में दो हाथ का कुण्ड होता है। १००००० (एक लाख) आहुति में चार हाथ का कुण्ड होता है। १०००००० (दस लाख) आहुति में छः हाथ का कुण्ड होता है। १००००००० (एक करोण) आहुति में आठ हाथ का कुण्ड होता है। शारदातिलक के अनुसार कोटि होम में दस हाथ का कुण्ड होना चाहिए- 'दशहस्तमितं कुण्डं कोटि हो मेऽपि दृश्यते'। किसी विद्वान के मत से कोटि होम में सोलह हाथ के कुण्ड का विधान बताया है। विधान परिजात के अनुसार दस लाख आहुतियों के हवन कार्य में पाँच हाथ का कुण्ड, बीस लाख की आहुतियों वाले हवन में छः हाथ का, पचास लाख की आहुतियों वाले हवन कार्य में सात हाथ का कुण्ड और एक करोण आहुतियों वाले हवन में दस हाथ का कुण्ड

²⁵⁶ यज्ञ-मीमांसा, पृ.-४९५

²⁵⁷ बालू, मिट्टी आदि से एक अङ्गुल ऊँचाई के मानतक जो वेदी बनाई जाती है उसे स्थण्डिल कहते हैं

बनाना चाहिए। कुछ शास्त्रकार (दस हजार) आहुतियों वाले हवन में एक हाथ का, लक्षहोम में दो हाथ का, और कोटि होम में चार हाथ का कुण्ड मानते हैं। स्कन्दपुराण में चार हाथ चौकोर अर्थात् सोलह हाथ के क्षेत्रफल वाला कुण्ड। कोटिहोम के लिए बताया गया है। वास्तव में ये मतभेद घृत-तिल-दुग्धादि दही-वस्तुभेद से या हवनीय पदार्थों की स्थूलतादि के तार तम्य से समझने चाहिए, क्योंकि कात्यायनमहर्षि ने 'परिमाणम्' यह लिखकर यह बता दिया है कि हवनीय पदार्थ-सामग्री के अनुसार कुण्ड मान का तारतम्य देख लेना आवश्यक है।

२.७ कुण्ड-हस्तमान-

कुण्ड- हस्तमान के विषय में अनेक पौराणिक ग्रन्थों में इस प्रकार वर्णन किया गया है-

समचतुर साक्षण्या रज्ज्वर्द्धिकरणीति। (शुल्व सूत्र)

पूर्व पूर्वस्य कुण्डस्य कोण सूत्रेण निर्मितम् ॥

उत्तरोत्तर कुण्डस्य मानं तत्परिकीर्तितम् ॥ (यामल)

पूर्वकुण्ड श्रवः कोटि उत्तरस्येति कल्पना।

विज्ञेया सर्वदा तज्ज्ञैर्द्विहस्तादिविधिस्त्वयम् (शारदातिलक)

चतुः कोणाक्ष्ण यारज्जुः करणीयत्र जायते॥

फलं द्विगुणितं तत्र चतुरस्रे समीरितम् ॥ (कुण्ड रत्नाकर)

यहाँ यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि उपर्युक्त कुण्डमान में जो हस्त मान बताया गया है यद्यपि वह हस्तमात्र कुण्ड का एक-एक भुजा चौबीस अंगुल का होता है किन्तु द्विहस्त कुण्ड का एक-एक भुजा अड़तालीस अङ्गुल का नहीं माना जायेगा। इस तरह भुजकरण में तो चार हाथ के कुण्ड होने की आपत्ति उठती है। इसलिए शुल्व सूत्र, यामल, शारदातिलक और कुण्डरत्नाकरादि ग्रन्थों में इसके नाम को विशेष रूप से बताया गया है। उसके अनुसार कुण्ड का हस्त मान इस प्रकार से है-

पद - १२ अङ्गुल

एक हस्त - २४ अङ्गुल

द्विहस्त - ५८ अङ्गुल दो - हस्त ३४"

रत्नि - २१ अङ्गुल

तीन - हस्त ४१/५”

सात- हाथ ६३”

अरत्नि - २११ अङ्गुल

चार- हस्त ४८”

आठ - हाथ ६७”

इस प्रकार से यज्ञ में कुण्ड को परिमाण पर विशेष ध्यान देना चाहिए। यदि कुण्ड के परिमाण में न्यूनता अथवा आधिक्य हो, तो वह कुण्ड अनेक दोष-प्रदायक होता है। इसलिये अपना भला चाहने वाले पुरुष को भलीभाँति परीक्षा करके कुण्ड का निर्माण करना चाहिए।²⁵⁸ अतः यज्ञ कुण्डों का निर्माण करने के लिए नियमों का अनुसरण करना चाहिए जैसे- वैश्वदेव कर्म में अठारह अङ्गुल का कुण्ड बनाना चाहिए। उसमें तीन मेखलाएँ हों या दो मेखलाएँ हो अथवा एक ही मेखला से युक्त हो और वह चारों ओर चौकोर हो। कुछ विद्वानों ने इस कर्म में तांबे का कुण्ड बनाने का विधान किया गया है। इसे चौकोर मनोहर समान भुज सूत से नाप कर बनाना चाहिए। इसे चार अङ्गुल ऊँचा और पूर्व तथा उत्तर की ओर ढालू बनाना चाहिए। इसको होम व आहुतियों के अनुसार अधिक ऊँचा अथवा बाण के बराबर ऊँचा बनाना चाहिए।

वैश्वदेवे प्रकुर्वीत कुण्डमष्टादशाङ्गुलम् ।

मेखलात्रयसंयुक्तम् द्विमेखलमथापि वा॥

स्यादेकमेखलं वापि चतुरस्रं समन्ततः॥

अपि ताम्रमयं प्रोक्तं कुण्डमत्र मनीषिभिः ॥

चतुरस्रं च सुश्लक्ष्णं तुल्यं सूत्रेण साधयेत्॥

समं वेदाङ्गलोच्छ्रायं प्रागुदक् प्रवणं भवेत् ॥

अधिकं वेषुमात्रं वा कुर्याद् होमानुसारतः।

मन्त्रविद् ब्राह्मण शास्त्र अनुसार कुण्ड-निर्माण करायें। भूमि रूप सर्प में शिरोभाग को छोड़कर भूमि खोदनी चाहिए क्योंकि शिर कटने से कर्ता की मृत्यु तथा पिण्ड कटने पर पितरों

²⁵⁸ अनेक दोषदं कुण्डयत्र न्यूनाधिकं यदि। तस्मात्सम्यक् परीक्ष्यैव कर्तव्यं शुभमिच्छता॥ वशिष्ट स.- १८.३१

की हानि होती है। पृष्ठ भाग में खोदने से दुःख एवं कष्ट होता है। अतः उदर भाग में ही कुण्ड खोदना चाहिए। जैसा कि पं श्रीवेणी राम शर्मा जी ने यज्ञ मीमांसा में उल्लेख किया है।²⁵⁹

ततः कुण्डं खनेन्मन्त्री यथा शास्त्रविधानतः ॥

त्यक्त्वा सर्पस्य गात्रं च शिरोदेशं प्रयत्नतः ॥

शिरोधाते भवेन्मृत्युः पिण्डे च पितृधातनम् ॥

पृष्ठे च दुःख सम्भूतिः क्रोडे सर्वार्थसाधनम् ॥

यदि किसी कारण वश कुण्ड विधान-साधन सम्भव न हो तो नित्य-नैमित्तिकादि स्वल्प हवनों में एक हाथ विस्तृत (२४ अङ्गुल) चौकोर एक अङ्गुल या चार अङ्गुल ऊँचा वेदि का बनाकर हवन किया जा सकता है।²⁶⁰ यह वेदी भूरी बालू मिट्टी या लाल मिट्टी की बनायी जा सकती है। जैसा कि शारदा तिलक में वर्णित है।

नित्य-नैमित्तिके होमे स्थण्डिले वा समाचरेत्।

हस्तमात्रेण तत्कुर्याद् बालुकाभिस्तु शोभनम् ॥ (शारदा तिलक)

अङ्गुलोत्सेधसंयुक्तं चतुरस्रसमन्ततः..... (शारदा तिलक)

अस्थण्डिलं बालुभिर्वारक्तमृद्-रजसोऽपि वा। (क्रिया सार)

बौधायन् के अनुसार, कुण्ड की भाँति चौकोर वेदिका की भी मेखला बनानी चाहिए। शुल्वकारिका-ग्रन्थ के अनुसार वेदिका की परिमाण, आहुतियों पर निर्भर करता है। उदाहरण के अनुसार पचास आहुतियों वाले होम में एक अङ्गुल की ऊँचाई, सौ आहुतियों वाले हवन में दो अङ्गुल की, एक हजार आहुतियों वाले हवन में चार अङ्गुल की, दस हजार आहुतियों वाले हवन में आठ अङ्गुल की, एक लाख आहुतियों वाले हवन में सोलह अङ्गुल की, दस लाख आहुतियों वाले हवन में बीस अङ्गुल की, और एक करोण आहुतियों वाले हवन में पच्चीस अङ्गुल की ऊँचाई करनी चाहिए। इससे भी अधिक आहुतियों वाले हवन में भी इतनी ही ऊँचाई

²⁵⁹ यज्ञ-मीमांसा, पृ. ३३०

²⁶⁰ कुण्डाभावे तु होमार्थं स्थण्डिलं पीठमेव वा। होमार्थेस्थण्डिलं पीठं कार्यमित्याह शौनकः ॥ बौ.गृ.-३.५.८

की वेदिका बनानी चाहिए। वायव्य संहिता में हवन कार्य के लिए कुण्ड- स्थण्डिलादि का अभाव होने पर लोहे के पात्र में या मिट्टी के नये पात्र में हवन करने का भी विधान बताया गया है।²⁶¹

२.३ यज्ञ-हवन में अग्नि का विधान-

यज्ञ-हवन आदि कार्यों में अरणि से उत्पन्न, सूर्यकान्त मणि से उत्पन्न और श्रोत्रिय के घर की अग्नि उत्तम मानी गई है। अपने घर की अग्नि मध्यम् कही जाती है।²⁶² जैसा कि प्रयोगरत्न में वर्णित है-

उत्तमोऽरणिजन्योऽग्निर्मध्यमः सूर्यकान्तजः ।

उत्तमः श्रोत्रिय गृहामध्यमः स्वगृहादिजः॥

अतः श्रोत्रिय (वेदज्ञ) के घर से लाई हुई अग्नि को उत्तम अग्नि मानी जाती है। चाण्डाल की अग्नि, अपवित्र अग्नि, अशौच की अग्नि पतित की अग्नि और चिता की अग्नि का व्यवहार करना शिष्ट लोगों के उपयुक्त नहीं है।

(अ.) अग्नि का ध्यान-

यज्ञ-हवन करते समय अग्नि का इस तरह का ध्यान करना चाहिए कि अग्नि देव के सात हाथ हैं, चार सींग हैं, सात जिह्वायें हैं, दो सिर हैं, तथा तीन पैर हैं। वे प्रसन्नमुख और मधुर मुस्कान युक्त सुख पूर्वक आसन पर विराजमान रहते हैं। वे भेड़ पर आरूढ़ जटाबद्ध, गौरवर्ण, महातेजस्वी, धूम्रध्वज, लाल नेत्र वाले, सात ज्वाला वाले, सब कामनाओं को पूर्ण करने वाले देदीप्यमान, ऊर्ध्वगामी ज्वालाओं से युक्त हैं। उनके दक्षिण भाग में स्वाहा और वाम भाग में स्वधा देवी विराजमान हैं और वे अपने दाहिने हाथों में शक्ति, अन्न , स्रुक्, स्रुव, तोमर, पंखा

²⁶¹ अथाग्निकार्यं वाक्ष्यामि कुण्डे वास्थण्डिलेऽपि वा॥

वेद्यां वाप्यायसे पात्रे मृन्मये वा नये शुभे ॥ वायव्य. संहिता

²⁶² उत्तमोऽरणिजन्योऽग्निरुत्तमः सूर्य कान्तजः।

उत्तमः श्रोत्रियाम रामध्यमः स्वगृहादपि॥ संग्रहकार

और बाएँ हाथ में घृत पात्र धारण किये हुए हैं। अपने सम्मुख उपस्थित ऐसे रूप वाले अग्नि का ध्यान करना चाहिए, जैसा कि वसिष्ठ कल्प में उल्लेख किया गया है।²⁶³

सप्तहस्तश्चतुः शृङ्गः सप्तजिह्वो द्विशीर्षकः ॥

त्रिपात् प्रसन्नवदनः सुखासन समन्वितः ॥

शिखाभिर्दीप्यमानाभिर्ऊर्ध्वगाभिस्तु संयुतः ॥

स्वाहा तु दक्षिणे पार्वे देवीं वामे स्वधां तथा ॥

विभ्रद् दक्षिणहस्तैस्तु शक्ति मन्त्रं सुचं सुवम् ॥

तोमरम् व्यजनम् वामै घृतं पात्रं च धारयन् ॥

मेषारूढो जटाबद्धो गौरववर्णो महौजसः ।

धूम्रध्वजो लोहिताक्षः सप्तार्चिः सर्वकामदः ॥

आत्माभिमुखमासीन एवं रूपो हुताशनः। (वसिष्ठकल्प)

इस प्रकार से अग्नि का दूसरा ध्यान शारदा तिलक में उल्लेख किया गया है²⁶⁴ -

इष्टं शक्तिं स्वस्तिकाभीतिमुच्चैर्दीर्घैर्धरियन्तं जपाभम् ॥

हेमाकल्पं पद्यसंस्थं त्रिनेत्रं ध्यायेद् बन्धिम् मौलिं जटाभिः ॥²⁶⁵

अर्थात् यज्ञन कर्ता को अग्नि देव का दूसरा ध्यान इस प्रकार से करना चाहिए कि “वे अग्नि देव अपनी ऊँची भुजाओं में इष्टमुद्रा, शक्ति, स्वास्तिक, अभय मुद्रा को धारण किये हुए जपा कुसुमकी तरह कान्तिवाले, सुवर्ण के आभूषणों को धारण करने वाले, कमल पर बैठे हुए,

²⁶³ वसिष्ठकल्प- धर्म कर्म सर्वस्व, पृ.- २९

²⁶⁴ शारदातिलक - ५.७.३४

²⁶⁵ शारदातिलक- ५.८.३४

तीन नेत्र वाले और जिनका मस्तक अग्नि की ज्वालाओं से धधक रहा है, ऐसे अग्नि देव का ध्यान करें”।

अग्नि का तीसरा ध्यान इस प्रकार से है कि “अग्नि देव के दो मुख, एक हृदय, चार कान, दो नाक, दो मस्तक, छः नेत्र, पिङ्गल वर्ण और सात जिह्वाएँ हैं। उनके वाम भाग में तीन हाथ और दक्षिण भाग में चार हाथ हैं। स्रुक, स्रुवा, अक्षमाला और शक्ति- ये सब उनके दाहिने हाथ में हैं। उनके तीन मेखला और तीन पैर हैं। वे घृत पात्र और दो चँवर धारण किये हुए हैं। भेड़ (छाग) पर सवार हैं। उनके चार सींग हैं। उदित सूर्य के सदृश उनकी अरुण कान्ति है। वे यज्ञोपवीत धारण करके जटा और कुण्डलों से सुशोभित हैं”।

(ब.) अग्नि को प्रज्वलित करने का विधान-

यज्ञाग्नि को न तो हाथ से न सूप से और न पवित्र मृगचर्म आदि से प्रज्वलित करना चाहिए। वस्त्र से अग्नि धौंकने पर रोग होता है, सूप से धौंकने पर धन-नाश होता है, हाथ से धौंकने पर मरण होता है। किन्तु मुख से धौंकने पर कार्य सिद्धि होती है।²⁶⁶ अतः मुख से ही अग्नि को प्रज्वलित करें क्योंकि अग्नि की उत्पत्ति विराट पुरुष के मुख से ही उत्पन्न हुआ है। इसी प्रकार से पद्मपुराण में भी कहा गया है।²⁶⁷ मयूर आदि के पंख से निर्मित पंखे से सूप से और हाथ से अग्नि को प्रज्वलित नहीं करना चाहिए। मुख से ही, अग्नि को प्रज्वलित करना चाहिये, क्योंकि भगवान् के मुख से अग्नि उत्पन्न हुआ है।

(स.) हवन योग्य अग्नि का चयन-

छन्दोग्यपरिशिष्ट ग्रन्थ में लिखा है कि ज्वालाहीन और अङ्गारहीन अग्नि में हवन नहीं करना चाहिए, क्योंकि जो मनुष्य तेजहीन अग्नि तथा अङ्गारहीन अग्नि में आहुति देता है वह मन्दाग्नि इत्यादि रोगों से दुःखी तथा दरिद्रता को प्राप्त होता है। अतः प्रत्येक यज्ञकर्ता को

²⁶⁶ न पाणिना न भूपेण न च मेध्याजिनादिभिः। मुखेनोपधमेदग्निं मुखादेव व्यजायत॥

पटकेन भवेद् व्याधिः शूर्पेण धननाशनम् । पाणिना मृत्यु माप्नोति कर्म सिद्धिर्मुखेनतु ॥

देवी भागवत- ११.२२.५-६

²⁶⁷ ब पंक्षकेणोपथमेल शूर्पेणन पाणिना। मुखेनाग्नि समिन्धीतमुखादग्निरजायत्॥

पद्मपुराण, स्वर्ग खण्ड ५५.८६-८७

प्रज्वलित अग्नि में ही हवन करना चाहिए।²⁶⁸ वायु पुराण में स्पष्ट कहा गया है²⁶⁹ कि- “जो यजमान अग्नि के प्रज्वलित न होने पर और धूम के रहते हुए अग्नि में हवन करता है, वह अन्धा और पुत्र हीन होता है, ऐसा हमने सुना है। अतः आरोग्य, दीर्घायु और विशिष्टरूप में लक्ष्मी की प्राप्ति के इच्छुक को प्रज्वलित अग्नि में ही हवन करना चाहिए, जैसा कि कात्यायन् स्मृति में उल्लेख किया गया है-

तस्मात्समिद्धे होतव्यं जासमिद्धे कदाचन।

आरोग्य मिच्छतायुश्च श्रियमालन्तिक पराम् ॥²⁷⁰

कापिल स्मृति में भी यहीं मत है कि प्रदीप्त ज्वाला युक्त अग्नि में ही हवन करना चाहिए।

(द.) अग्नि में सुक्-सुवा से आहुति देने का विधान-

सुक्-सुवा के बिना हाथ से आहुति देने पर होता अपने यजमान को स्वर्ग लोक से रहित कर देता है।²⁷¹ अतः सुक्-सुवा से ही आहुति देनी चाहिए और अग्नि कुण्ड में हुत किया हुआ पुरोडाश उसमें इधर-उधर तथा बाहर भी नहीं गिरना चाहिए। उसे केवल प्रज्वलित अग्नि में ही गिरना चाहिए।

(इ.) यज्ञ-कर्म के अनुसार अग्नि नाम -

प्रत्येक यज्ञ कर्म के लिये अग्नि के अलग-अलग नाम हैं। अतः जिस यज्ञ कर्म के लिए जिस अग्नि का आचार्यों ने निर्देशित किया है, उसी अग्नि का विधि सहित आवाहन एवं स्थापन कर हवन करना चाहिए। आचार्य वाचस्पति ने अग्नि के सत्ताईस नामों का उल्लेख इस प्रकार से किया है।

लौकिक पावको अग्निः प्रथमः परि कीर्तितः ।

²⁶⁸ छन्दोग्य परिशिष्ट

²⁶⁹ अप्रबुद्धे सधूमे च जुहुयाद्योताशने। यजमानो भवेदधः सोऽपुत्रइतिजः श्रुतम् ॥ वायु पुराण- ७.५.६२

²⁷⁰ कात्यायन् स्मृति- १.१२-१३

²⁷¹ यद्धस्तेन जुह्यात् सुव गल्ललोकाद्य जमानमवविध्येत, सुची जुहोति॥

सुवर्गस्य लोकास्य सगष्ट्यैच॥ तै.ब्रा.- १.६.३

अग्निस्तु मारुतो नाम गर्भाधाने प्रकीर्तितः ॥

सप्तविंशति संख्याका अग्नयः कर्मसुस्मृताः ॥

लौकिक कर्मों में 'पावक' नाम का, गर्भाधान में 'मारुत्' नाम का पुंसवन संस्कार में 'चमस' नाम का, विविध शुभकर्मों में 'शोभन्' नाम का, सीमान्तोन्नयन में 'अनल' नाम का, जातक कर्म में 'प्रगल्भ' नाम का, नामकरण में 'पार्थिव' नाम का, अन्न प्राशन में 'शुचि' नाम का, चूड़ाकरण में 'सभ्य' नाम का, व्रत बन्ध में 'समुद्भव' नाम का, गोदानाख्य संस्कार कर्म में 'सूर्य' नाम का और समार्वतन में 'याजक' नाम का अग्नि कहा गया है। विसर्ग कर्म में 'वैश्वानर' नाम का तथा विवाह में 'बलद' नाम का अग्नि कहा गया है। चतुर्थी कर्म में 'शिखी' नाम का, दूसरे धृति होमादि में 'धृति' नाम का, अग्न्याधान में 'आवसथ्य' नाम का, वैश्वदेव में 'पावक' नाम का, तथा ब्रह्मरूप गार्हपत्याग्नि, ईश्वर रूप दक्षिणाग्नि, विष्णु रूप आहवनीय अग्नि-ये तीनों अग्नि अग्निहोत्र में कहे गये हैं। लक्षहोम में 'अभीष्ट' नाम का अग्नि, कोटिहोम में 'महाशन' नाम का अग्नि, अग्नि-ध्यान में तत्पर कोई पुरुष उसे 'घृतार्चिः' कहते हैं। रुद्र आदि में 'मृड' नाम का, शान्तिक कर्म में 'शुभकृत' पौष्टिक कर्म में 'वरद' नाम का, अभिचारिक कर्म में 'क्रोध' नाम का, वशीकरण में 'वशकृत्' नाम का, वन जलाने में 'पोषक' नाम का, पेट में 'जठर' नाम का, शवदाह में 'क्रव्याद' नाम का, समुद्र में 'वाडवाग्नि' नाम का और प्रलय में 'संवर्तक' नाम का अग्नि और वेद शास्त्र में 'अभिहित' अग्नि है। इस प्रकार से सब यज्ञ कर्मों की कुल सत्ताईस अग्नियाँ कही गई हैं। इसी प्रकार से देवीपुराण में भी कहा गया है।²⁷²

आधानेभरतो हाग्निर्वरः पुंसवने स्मृताः ॥

सीमन्तो मङ्गलो नाम जातकर्म स्वभूः स्मृतः ॥

शङ्करो म्लेच्छ लोकेषुसंधोवैचेष्ट पाकजः ॥

दित्ते शुद्धिं विजा नीयाज्जयः शुक्रनिवेशने॥

²⁷² देवीपुराण- १.२३

इसमें वीर्याधान में 'जय' नामक अग्नि बताया गया है। अतः इस प्रकार से सोलह संस्कारों में, सूर्याद नवग्रहों की शान्ति में, काम्य प्रयोगों में, आभिचारिक कर्मों में तथा लक्षहोम-कोटिहोम आदि में ऊपर लिखे पृथक्-पृथक् नाम से अग्नि का आवाहन करके पूजा-हवन आदि करने पर ही कार्य सिद्धि होती है। बिना अग्नि ज्ञान के किसी भी अग्नि नाम से हवन करने पर कार्य सिद्ध नहीं होता है।

अतः ऐसा ही मत शुभ-कर्म निर्णय में वर्णित है कि जो मनुष्य अग्नि के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान न कर हवन करता है तो उसका किया हुआ हवन सर्वथा निष्फल होता है, न उसका उत्तम संस्कार होता है और न ही वह कर्मफल को प्राप्त करता है। किन्तु जो अग्नि के स्वरूप को जानकर अग्नि की आराधना करता है उसके ऐहिक तथा पारलौकिक कार्यों में अग्नि सारथीका कार्य करता है। अतः जिस यज्ञ कर्म में जिस अग्नि का विधान हो उस अग्नि का उस कार्य में। आह्वान करके ही हवनादि करना चाहिए।

(म).अग्नि की जिह्वा के नाम-

अग्नि की जिह्वाओं के सात नामों का उल्लेख मुण्डकोपनिषद् में किया गया है।²⁷³ काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूमवर्णा, स्फुलिङ्गिनी और विश्वरूचीदेवी- इस प्रकार से ये सात प्रकार की लप-लपाती हुई अग्नि की जिह्वाएँ हैं। इसी प्रकार से गृह्यसंग्रह में भी उल्लेख है-

कराली धूमिनी श्वेता लोहिता नीललोहिता ।

सुवर्ण पद्म रागा च सप्त जिह्वा विभावसो ॥

कराली, धूमिनी, श्वेता, लोहिता, नीललोहिता, सुवर्णा और पद्मरागा ये सात अग्नियाँ गृह्यसंग्रह में वर्णित हैं। इसी तरह परशुराम कारिका में इससे कुछ भिन्न नाम कहे गये हैं। 'हिरण्या, कनका, रक्ता, कृष्णा, सुप्रभा, बहुरूपा और अतिरिक्ता- ये सात जिह्वाएँ अग्नि की मानी गयी हैं। कर्म भेद अग्नि की जिह्वाओं के अलग-अलग नाम हैं विवाह में वारुणी यज्ञ कर्म

²⁷³ काली काली च मनोजवा च सुलोहिताया च सुधूमवर्णा च।

स्फुलिङ्गिनी विश्वरूची च देवी लेलाय माना इति सप्त जिह्वाः ॥ मुण्ड.उप. - १७२.४

में मध्यमा, उपनयन में उत्तरा, पितृकर्म में दक्षिणा, समस्त कार्यो में प्राचीना, समस्त कर्म में आग्नेयी और उग्र कर्म में ऐशानीनाम की जिह्वा कही गई है। यहीं हवन का लक्षण है। वसिष्ठ कल्प में अग्नि जिह्वाओं के स्थान भी बताए गये हैं। अग्नि कुण्ड के पूर्व भाग में काली, अग्निकोण में कराली, दक्षिण में मनोजवा नैर्ऋत्य में सुलोहिता, पश्चिम में धूम्रवर्णा, वायव्य कोण में स्फुलिङ्गिनी और उत्तर में विश्वरूचि जिह्वा का स्थान है। जैसा कि वसिष्ठकल्प में उल्लेख है-

कुण्डस्य पूर्व दिग्भागे काली जिह्वा प्रकीर्तिता ।

आग्नेये तु करालाख्या दक्षिणेऽथ वारूणे ॥

सुलोहिता च नैर्ऋत्यां धूम्रवर्णाऽथ वारूणे ।

स्फुलिङ्गिनी तु वायव्ये सौम्ये विश्व रूचिस्तथा ॥ (वसिष्ठ कल्प)

(र). यज्ञ-कर्म के अनुसार अग्नि-जिह्वा का उपयोग-

धर्म ग्रन्थों में यज्ञ कर्म के अनुसार अग्नि जिह्वा का उपयोग इस प्रकार से बताया गया है-

काल्याकराल्यां वा कुर्याच्छान्तिकं पौष्टिकं तथा ।

मनोजवायां जिह्वायामाभिचारो विधीयते ॥

सुलोहितायां जिह्वायां तस्यामुच्चाटनं विदुः ।

सर्वार्थ सिद्धिदां विश्वरूचिं मन्त्रविदोविदुः ॥ (वसिष्ठकल्प)

विवाहे वारूणीजिह्वा मध्यमा यज्ञ कर्मसु ।

उत्तरा च उपनयने दक्षिणापितृ कर्मसु ॥

प्राचीना सर्वकार्येषु ह्यग्नेयी सर्वकर्मसु ।

ऐसानी च उग्रकार्येषु विद्यात् तत् होम लक्षणम् ॥ (संग्रहकार)

अतः प्रत्येक कर्मों में अग्नि जिह्वा का अलग-अलग उपयोग इस प्रकार से है- 'शान्ति और पौष्टिक कर्म में काली और कराली जिह्वा, आभिचारिक कर्म में मनोजवा, उच्चाटन के काम में

सुलोहिता जिह्वा का उपयोग करना चाहिए। अविश्वरूचि जिह्वा सर्वार्थ सिद्धिप्रद मानी गई है।

२.४ यज्ञ में उपयुक्त घृत-

यज्ञ में गाय का घृत उत्तम माना गया है और भैंस का मध्यम तथा बकरी का घृत निकृष्ट बताया गया है। अतः गोघृत ही यज्ञकर्म में श्रेष्ठ²⁷⁴ है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में घृत के अभाव में तिल का विधान किया गया है।²⁷⁵

➤ पूर्ण पात्र का लक्षण एवं फल-

अत्यधिक खाने वाले ब्राह्मण की जितने अन्न से पर्याप्त तृप्ति हो जाय उतना ही पूर्ण पात्र का प्रमाण माना गया है। यह पूर्ण पात्र यव अथवा ब्रीहि से भरना चाहिए- “यवैर्वा ब्रीहिभिः पूर्णं शूर्पं तत् पूर्णं पात्रकम् ।” अतः जो मनुष्य पूर्ण पात्रों के बिना यज्ञादि क्रिया करता है उसकी सारी क्रियाएँ निष्फल हो जाती है तथा धन सम्पत्ति का भी नाश होता है। अतः यज्ञ कर्म में पूर्ण पात्र और मन्त्र से किया गया यज्ञ समस्तकर्म दोषों को दूर करने वाला है।

२.५ यज्ञ सामग्री लाने का नियम-

शङ्ख ऋषि ने लिखा है कि- यज्ञ की समिधाएँ, पुष्प-कुशा आदि को ब्राह्मण स्वयं ही लावें। शूद्र के द्वारा खरीदकर लाई हुई समिधा आदि से हवन-कर्म को करने वाला मनुष्य नरक में जाता है। अतः यज्ञ सामग्री ब्राह्मण को स्वयं लाना चाहिए²⁷⁶, जैसा कि आचार प्रदीप में भी उल्लेख है-

समित्पुष्प कुशादीनि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत्।

शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन् व्रजत्यधः॥ (आचार प्रदीप)

²⁷⁴ उत्तमंगोघृतं प्रोक्तम मध्यमं महिषीभवम् ॥

अधर्मं छागलीजातं तस्माद् गव्यं प्रशस्यते॥ पिङ्गलामत

²⁷⁵ यत्र यत्र च सङ्कीर्णमात्मानं मन्यते द्विजः॥

तत्र तत्र तिलैर्मो गायन्या वाचनं तथा॥ याज्ञ.स्मृ.- ३०९

²⁷⁶ समित्पुष्प-कुशादीनि ब्राह्मणः स्वयमाहरेत् ।

शूद्रानीतैः क्रयक्रीतैः कर्म कुर्वन् व्रजत्यधः॥ शंखः स्मृ.-४३

संस्कार रत्नमाला में यह विकल्प दिया गया है कि यदि किसी कारण वश शूद्रादि के द्वारा यज्ञ सामग्री लाये जाने पर उन समिधादि वस्तुओं का वेदोक्त पवमान सूक्त से प्रोक्षण कर लेना चाहिए।

➤ यज्ञादि में कुश धारण की अनिवार्यता-

बिना कुश धारण किये सन्ध्या करना, बिना जल लिये हुए दान सङ्कल्प करना और बिना गणना किये हुए जप करना आदि ये कुंशरहित कर्म निष्फल हो जाते हैं²⁷⁷, जैसा कि पं० श्री वेणीराम शर्मा जी ने अपने ग्रन्थ यज्ञ मीमांसा में उल्लेख किया है-

कुशेन रहिता पूजा विफला कथिता मया।

उद्केन् बिना पूजा बिना दर्भेण या क्रिया॥

आज्येन च बिना होमः फल दास्यन्ति नैवते।

अतः प्रयोग, पारिजात में वर्णित है-

स्नाने होमे जपे दाने स्वाध्याये पितृकर्मणि।

करौ सदर्भो कुर्वीत तथा सन्ध्याशिवादने ॥

इसी प्रकार से कूर्म पुराण में भी कहा गया है। 'कुश और यज्ञोपवीत' के बिना किया हुआ समस्त कर्म राक्षस कहलाता है और वह न तो इहलोक में न तो परलोक में ही फलप्रद होता है।²⁷⁸ प्रत्येक यज्ञकर्म के लिये भिन्न-भिन्न रङ्ग के कुश धारण का विधान कात्यायन सूत्र में बताया गया है; जैसे श्रौत-स्मार्त यज्ञों में हरे रंग की, पञ्चमहायज्ञ में पीत वर्ण की, वैश्व देव कर्म में मलीन वर्ण की तथा पितृ कर्म में जड़वाली (दर्भा) कुशाएँ लेनी चाहिए।

²⁷⁷ दर्शा हीना तुया सन्ध्या यच्च दार्जबिनोदकम् ।

असंख्यातं चयज्जसं तत्सर्वं निष्फलं भवेत्॥ धर्मकर्म सर्वस्व, पृ.-३४

²⁷⁸ बिना दर्भेण यत्कर्म बिना सूत्रेण बापुजः॥

राक्षसं तद्भवेत्सर्वनामुत्रेड फल प्रदम् ॥ कूर्म पुराण, अ.-१८.५०

दर्भा²⁷⁹, कृष्ण मृगचर्म, मन्त्र, ब्राह्मण, इवि, यज्ञानियों ये सब वस्तुएँ बेकार तथा अपवित्र नहीं है। इसलिए यज्ञ कार्य में इनका प्रयोग बार-बार किया जा सकता है। जिन दर्भाओं में से अन्य अलर ने निकले हों वे दर्भा कहलाती है, जिनमें से अन्य अङ्कुर निकल गये हों वे कुशा मानी गयी हैं। जड़ सहित कुतपा कहते हैं और जिनकी नोकें टूट गयी हो वे घास के तुल्य मानी जाती है। कुश के अभाव में दूर्वा का भी प्रयोग किया जा सकता है क्योंकि कुश सात माने गये हैं। कुश, काश, दूर्वा, जौका, पत्ता, धान का पत्ता, बल्बज और कमल आदि ये सात कुश हैं इसमें कुश सर्वश्रेष्ठ है।

➤ कुशनिर्मित ब्रह्मा, विष्टर और पवित्र का प्रमाण-

यज्ञ-कर्म में पचास कुशा का ब्रह्मा बनाया जाता है और पचीस का विष्टर। दक्षिणावर्त वाला ब्रह्म बनता है और वामावर्त वाला विष्टर। अनन्त गर्भ वाला, साग्र भाग वाला तथा द्विदल वाला कुश निर्मित पवित्र बनता है-

पञ्चाशभिर्भ वेद ब्रह्मा तदर्धेन तुविष्टरः ॥

दक्षिणावर्त्तको ब्रह्मा वामार्तस्तु विष्टरः ॥

अनन्त गर्भकं सायं कौशं द्विदलमेवच।

प्रदेश मात्रं विज्ञेयं पवित्रं यत्र कुत्रचित् ॥

मार्कण्डेय पुराण में पवित्र धारण करने के लिए भिन्न-भिन्न संख्या की कुश-पवित्र धारण करने का विधान बताया है। ब्राह्मण के लिये चार कुश का पवित्री कहा गया है और क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के लिये क्रम से एक-एक कुश कम कर देना चाहिए। अतः क्षत्रिय को तीन कुशों का, वैश्य को दो कुश का शूद्र को एक कुश का पवित्री बनाना चाहिए। अथवा सभी वर्गों के लिए नूतन और ग्रन्थि युक्त दो कुशों का पवित्री बनाना चाहिए। शान्तिक कर्म में चार कुशों का, पौष्टिक कर्म में पाँच कुशों का पितृकर्म में तीन कुशों का और नित्य कर्म में दो कुशों का पवित्री बनाना चाहिए।

²⁷⁹ जिन कुशों में से अन्य अंकुर न निकले हो वे दक्ष कहलाती है।

यज्ञ अनुष्ठान में कुश पवित्री का बड़ा व्यापक महत्व है। जप और होम के फल को हरण करने वाले दैत्य रूपी असुर हाथ में पवित्र धारण किये हुए बाण को देखकर दशों दिशाओं में भाग जाते हैं। जैसे इन्द्र का वज्र , विष्णु का चक्र, और शिव का त्रिशूल शस्त्र कहा गया है, वैसे ही ब्राह्मण का रक्षक शस्त्र पवित्री को कहा गया है।

२.६ यज्ञ आयुध-

यो वै दश यज्ञायुधानि वेद, मुखतोऽस्य यज्ञः कल्पते। स्फ्यश्चकपालानि चाग्नि होत्रहवणी च, शूर्पश्च कृष्णाजिनश्चशम्य चोलूखलश्च मुसलं हषच्चोपलानि चैतानि वैदशयज्ञायुधानि”²⁸⁰ स्य, कपाल, अग्निहोत्र हवनी, शूर्प, कृष्णमृगचर्म, शम्या, ऊखल, मूसल, हषत् और उपल श्रौत यज्ञों में काम आने वाले ये दस पात्र विशेष यज्ञायुध हैं।

➤ चमस् पात्र का प्रमाण-

बारह अंगुल लम्बा चौकोर प्राणीता पात्र होता है और उसकी गहराई इतनी ही होनी चाहिए कि जिसमें एक प्रस्थ जल भर जाय।²⁸¹

➤ प्रोक्षणी पात्र का प्रमाण-

वारणं पाणियात्रं द्वादशाङ्गुल विस्तृतम्॥

पद्मपत्राकृतिर्वापि प्रोक्षणी-पात्रमीरितम् ॥ (कर्म प्रदीप)

अर्थात् तारण की लकड़ी का बना हुआ बारह अंगुल विस्तृत कमल पत्र के अकार का प्रोक्षणी पात्र कहलाता है।

➤ आज्य स्थाली प्रमाण-

²⁸⁰ तै.सं.- १.७६.७८

²⁸¹ द्वादशाङ्गुलन्दीर्घेण चतुरस्रः सर्तकः। प्रस्थमात्रोदकग्राही प्रणीता चमसो भवेत्॥ कर्म प्रदीप, पृ.-३८

यद्यपि आज्य स्थाली “आज्यस्थाली तै जसी मृण्मयीवा” के प्रमाणानुसार कांस्य की होनी चाहिए तथापि उसके विकल्प में कर्म प्रदीप ग्रन्थ में मिट्टी के पात्र का विधान है। किन्तु कुम्हार के चाकू पर बनाया हुआ मिट्टी का पात्र निषेध है। ग्रन्थकारों ने इसे असुर पात्र माना है। यह आवश्यकता अनुसार छोटा-बड़ा पाने का प्रयोग में लाया जा सकता है। (कर्म प्रदीप).

➤ चरुस्थाली-प्रमाण-

मृण्मय्यौदुम्बरी वापि चस्थाली प्रशस्यते॥ (कर्म प्रदीप) चरुस्थाली मिट्टी या उदुम्बर की बनानी चाहिए। एक भाष्य कार ने उदुम्बर की स्थाली को ताम्र का बताया है।

➤ सुव का प्रमाण-

कर्म प्रदीप ग्रन्थ में लिखा है कि खैर या वरना की लकड़ी का सुव बनाना चाहिए। इसके चौबीस अङ्गुलों में छः देवताओं का निवास है- अग्नि, रुद्र, यम, विष्णु, इन्द्र, और प्रजापति। संग्रहकार के मत में शमी (सफेद कीकर या सफेद बबूल) का सुव होना चाहिए। यदि इसका अभाव हो तो अन्य वृक्ष का बनाने का विकल्प है। किन्तु खैर का सुव सर्वार्थ सिद्धि देने वाला है। शौनक महर्षि कहते हैं कि सुव खैर की लकड़ी का और जुहू पलाश की लकड़ी की होती है। सुव के अभाव में पलाश पत्र से भी हवन करने का विधान है। यदि पलाश का भी पत्ता न मिले, तो पीपल के पत्तों से भी हवन किया जा सकता है।

खादिरेण सुवः कार्यः पलाशेन जुहूर्भवेत्॥

पलाशपर्णाभावे तु पर्णैर्वापिप्पलोदभवैः॥ (शौनक)

सुवा सोने, चाँदी, ताँबे तथा खैर का होता है। सोने का सुवा ऐश्वर्य देने वाला, चाँदी का कीर्ति बढ़ाने वाला, ताँबे का शान्तिकारी और खैर का धनवर्धक तथा सर्वार्थ सिद्धि देने वाला है।

➤ सुव के पकड़ने का विधान-

सुव के अग्नि के स्थान को पकने से ताप, रुद्र के स्थान को पकने पर भयङ्कर भय, यम के स्थान को पकड़ने से मृत्यु, इन्द्र के स्थान को पकने से पशु नाश, प्रजापति के स्थान को पकड़ने से क्लेश, विष्णु के स्थान को पकड़ने से सर्वोत्तम फलप्रद होता है। सुवा पूर्णतः चौबीस अङ्गुल

का होता है, इसमें क्रमशः अग्नि, रुद्र, यम विष्णु, शक्र और प्रजापति आदि का चार-चार अङ्गुल में स्थान माना गया है। यज्ञ-हवन में प्रत्येक देवताओं के स्थान को पकड़ने का उपर्युक्त फल है, जिसमें विष्णु के स्थान को पकड़ने से सम्पूर्ण यज्ञ कर्मों में श्रेष्ठ फलप्रद होता है, जैसा कि कर्म प्रदीप में कहा गया है-

यममग्नि परित्यज्य शक्ररुद्रप्रजापतिम् ।

विष्णुस्थेन च हूयेत एवं कर्म शुभप्रदम् ॥

मूले चतुरङ्गुलेऽग्निर्द्वितीये रुद्र देवता।

तृतीये यम देवश्च चतुर्थे विष्णु देवता ॥

पञ्चमे शक्र देवः स्यात् षष्ठे चैव प्रजापतिः ।²⁸²

२.७ हविष्य पदार्थ (हवनीय अन्न)-

भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में अनेक हविष्य पदार्थ बताये गये हैं। जिनमें कई जगह विरोधाभास भी प्रतीत होता है, किन्तु गोदुग्ध, यवागू, घृत, भात, दही, चावल, मधु, धान, तिल, यव-ये सभी पदार्थ सभी ग्रन्थों में स्वीकार किये गये हैं। कहीं पर उड़द ग्राह्य हैं और कहीं पर इसका निषेध किया गया है। हेमादि ग्रन्थ में भविष्योत्तर का प्रमाण देकर बहुत से फल-फूलादि भी हविष्य पदार्थ सम्मिलित किये गये हैं। हविष्य पदार्थों में ब्रीहि उत्तम माना गया है, उनके अभाव में दही या दूध से हवन का उल्लेख मिलता है। यवों के अभाव में गेहूँ। और ब्रीहि और चावलों के अभाव में शालि चावल काम में लेना चाहिए। महर्षि कात्यायन का कथन है कि उड़द को दो और सरसों आदि पदार्थों को हवनादि कर्म में निषेध माना गया है।

हविष्यान्नं त्रि तिला माषाः नीवारा ब्रीहयोयवाः ।

²⁸² कर्म प्रदीप, पृ. ३७

इक्षवः शालयो मुद्गाः पयो दधि घृतं मधु॥

हविष्येषु यवा मुख्यास्तदनु व्रीहयः स्मृताः ॥

माष-कोद्रव-गौरादीन् सर्वाभावेऽपि वर्जयेत् ॥ (कात्यायन् सूत्र)

कदली लवली धात्रीफलान्यगुड मैक्षवम्॥

अतैलपक्वं मुनयो हविष्ययाणि प्रचक्षते ॥

इसी प्रकार से रेणु कारिका में भी उल्लेख किया गया है कि 'तिल, उड़द, तिन्नी , भदोंह, धान, जौ, ईख, वासमती, मूंग, दूध, दही, घी और शहद ये हविष्यान्न हैं। हविष्य अन्नों में जौः मुख्य है। इसके बाद धानों का स्थान कहा गया है। यदि धान भी न मिल सके तो दूध से अथवा दही से काम लेना चाहिए। जहाँ जो वस्तु कही गई है वह यदि न मिल सके तो उसके स्थान पर उससे मिलता-जुलता गुण वाली वस्तु को ग्रहण करना उचित है। जैसे जौ के स्थान में गेहूँ और धानों के स्थान में वासमती धान। इनके अभाव में धान, जौ, दधि अथवा दुग्ध ग्रहण करना उचित है। जैसा कि कात्यायन् स्मृति में उल्लेख है कि हविष्य अन्नों में जौ मुख्य है। इसके बाद धानों को कहा गया है। यदि हविष्य कोई भी प्राप्त न हो, तो उड़द, को प्रयोग करें किन्तु सरसों का कभी भी हविष्य रूप में उपयोग न करें।

➤ हवनीय द्रव्य पदार्थ एवं उसका (प्रमाण)-

परिमाण श्रुति-स्मृति-प्रमाणों से तिल, यव, चावल और घृत की ही हविर्द्रव्य की संज्ञा सिद्ध होती है। हवनादि में इन्हीं हविर्द्रव्यों का ही अधिक उपयोग होता है। शास्त्रकारों ने आहुति देने के विषय में हविर्द्रव्यों की एक नियमित व्यवस्था कर दी है। अतः जिस द्रव्य के विषय में जो परिमाण बताया गया है। उसी के अनुकूल तैयार करना चाहिए। शास्त्रोक्त अनुकूल कार्य करने से ही उचित फल की प्राप्ति होती है। इसके अभाव में अनेक प्रकार की हानि भोगनी पड़ती है। हविर्द्रव्यों के परिमाण का विवरण शास्त्रों में इस प्रकार मिलता है²⁸³⁻

तिलार्धं तण्डुलादेयास्तण्डुलार्धं यवास्तथा ।

यवार्धशर्करा प्रोक्ता सर्वार्धं च घृतं स्मृतम् ॥

अर्थात् तिल का अधा चावल और चावल का आधा जौ देना चाहिये। जौ से आधा शर्करा कही गई है और सभी का आधा घृत कहा गया है।

तिलार्धं तण्डुलाः प्रोक्तास्तण्डुलार्धं यवास्तथा ।

तण्डुलैस्त्रिगुणं चाज्यं यथेष्टं शर्करामता ॥

उपर्युक्त श्लोक हविर्द्रव्य का परिमाण इस प्रकार है- तिल के आधे चावल कहे गये हैं, चावलों के आधे जौ और चावलों से तिगुना घृत कहा गया है- शर्करा इच्छा अनुसार कही गई है।

तिलास्तु द्विगुणाः प्रोक्ता यवेभ्यश्चैव सर्वदा ।

अन्ये सौ गन्धिकाः स्निग्धा गुग्गुलादि यवः समाः॥

इस श्लोक में यव के अपेक्षा तिल को द्विगुणित बताया गया है, और अन्य सुगन्धित गुग्गुल इत्यादि द्रव्यों को यव के बराबर रखने का उल्लेख है।

तिलार्धं तु यवाः प्रोक्ता यवार्धं तण्डुलाः स्मृतः।

तण्डुलार्धं शर्कराः प्रोक्ता आज्यभागचतुष्टयम् ॥

अर्थात्, तिल का आधायव, यव का आधा चावल, चावल का आधा चीनी और चतुर्गुण घृत से शाकल्य निर्माण उत्तम् माना है। तिल की अधिकता से लक्ष्मी की प्राप्ति होती है और यव की अधिकता से दरिद्रता की प्राप्ति होती है। घृत की अधिकता से मुक्ति और शर्करा के अधिकता से सर्वार्थ सिद्धि प्राप्त होती है-

तिलाधिक्ये भवेल्लक्ष्मीर्यवाधिक्ये दरिद्रता ।

घृताधिक्ये भवेन्मुक्तिः सर्वसिद्धस्तु शर्करा ॥

इसी प्रकार से त्रिकारिका में उल्लेख है कि-

आयुःक्षयं यवाधिक्यं यवसाम्यं धनक्षयम्॥

सर्वकाम समृद्ध्यर्थे तिलाधिक्यं सदैव हि॥ (त्रिकारिका)

तिल से यव के अधिक होने पर आयु का नाश होता है। तिल के बराबर यव के रहने पर धन का नाश होता है। अतः सर्वदा तिलकी अधिकता ही उचित है। इससे सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि होती है।

अतः शान्तिरत्न में उल्लेख है कि- “घृत से सने काले तिल, कुछ यवों से युक्त हवनीय कहे गये हैं-

तिलाः कृष्णा घृताभ्यक्ताः किञ्चिद्यवसमन्विताः।

अक्षतान्वा तिलान्वापि यवान्वासमिधोऽपि वा ॥

शम्भवायेति जुहुयात्सर्वास्तानाज्यसिक्तकान्॥

अक्षत अथवा तिल या जौ अथवा समिधों का उन सब को घी में डुबोकर आहुति देनी चाहिये। अतः सब प्रकार के यज्ञ हवनों में तिल की अधिकता से ही यजमान की सर्वार्थ सिद्धियाँ होती हैं।

पञ्चभागास्तिलाः प्रोक्तास्त्रिभागास्तण्डुलास्तथा॥

द्वौ भागौ च यवस्योक्तौ भागैकं गुग्गुलादिकम् ॥

रुद्र भागैः कृते होमे जायते सिद्धिरुत्तमा॥

पाँच हिस्सा तिल, तीन हिस्सा चावल, दो हिस्सा जौ और एक हिस्से में गुग्गुल इत्यादि सुगन्धित द्रव्य-इस प्रकार एकादश भागों से संयुक्त हवन सामग्री से जो हवन किया जाता है वह सब प्रकार की उत्तम सिद्धि देने वाला है।

➤ कामना अनुसार हवनीय द्रव्यों का प्रयोग-

कतिपय ग्रन्थों में कामना के अनुसार हवनीय पदार्थों का उल्लेख है। हे देवि ! शान्ति कर्म में गोघृत से तर दूबकी समिधाओं का हवन करना चाहिये। जिससे निश्चय शान्ति होती है। यदि कि सीका स्तम्भन करना हो तो धन बहेडा (राजद) की समिधाओं का भेड़ के घीसे तरकर हवन करना चाहिए। निश्चय ही स्तम्भन कर्म में सिद्धि होती है। मारण कर्म में खैर की समिधाएँ कही गई हैं। कड़वे तेल में भिगोकर उनका श्रेष्ठ साधक पुरुषों को हवन करना चाहिये। उच्चाटन

कर्म में कडवे तेल से मिलाकर आम की समिधाएँ कही गई हैं। उनसे हवन करता हुआ साधक पुरुष पर्वत, वन, महावन सहित सम्पूर्ण पृथ्वी का उच्चाटन कर देता है।

तृतीय अध्याय

पर्यावरण एवं वैदिक यज्ञों का समन्वय

जीवन की अनुक्रियाओं को पर्यावरणीय परिस्थितियाँ प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरूपेण प्रभावित करती हैं और जीव भी उन्हें प्रभावित करता है। अतः जीव और पर्यावरण में परस्पर अन्तःक्रिया बनी रहती है।

३.१ पर्यावरण का परिचय और परिभाषा -

‘पर्यावरण’ शब्द से यह तात्पर्य है कि जो चारों ओर से घेरता है- ‘परितः आवृणोतीति पर्यावरणम्’ । यह अंग्रेजी भाषा के Environment²⁸⁴ शब्द का समानार्थक शब्द है। चारों ओरसे घेरने वाले ‘पर्यावरण’ के साथ ही; जिसे पर्यावरण घेरे रहता है, उसका भी महत्त्व अपेक्षित है। वस्तुतः किसी भी जीव के चारों ओर विद्यमान वह समस्त सजीव-अजीव परिवेश ही पर्यावरण है, जिसमें जीव निवास करता है। व्यापक दृष्टि से, इस पृथ्वी पर विद्यमान सभी तत्त्वों और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड से जीव घिरा हुआ है। सुप्रसिद्ध प्रकृतिविद् ई. फेडरोव ने प्रकृति को ‘समस्त ज्ञात ब्रह्माण्ड’ के रूप में परिभाषित किया है।²⁸⁵ अतः सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीवाणु हो या वनस्पति, पशु-पक्षी हों या मानव प्रत्येक जीव के पर्यावरण में वायु-आकाश, भूमि-मिट्टी, सरित-सागर, वन-उपवन, पेड़-पौधे, जीव-जन्तु, मानवादि से लेकर सूर्य-चंद्रादि नक्षत्र तक समस्त सृष्टि का समावेश किया जा सकता है।

²⁸⁴ फ्रांसीसी शब्द Environ (around) से बना शब्द जिसका शब्दार्थ है- Surroundings, Circumstances ,Influences (Oxford Advanced Learners Dictionary)

²⁸⁵ Speaking of nature, we mean actually the Section of the universe that is known to us today. (E. Fedorov ; Man & Nature)

आधुनिक विज्ञान की अवधारणा के अनुसार 'किसी जीव के चारों ओर विद्यमान भौतिक, रासायनिक एवं जैविक परिस्थितियाँ उसका पर्यावरण हैं'।²⁸⁶ पारिभाषिक रूप से 'पर्यावरण किसी जीव, उसकी प्रजाति या सम्पूर्ण जाति के विकास-वृद्धि-जीवन-मरण को प्रभावित करने वाली समस्त दशाओं, कारणों एवं प्रभावों के समग्र योग के लिए प्रयुक्त जीवशास्त्रीय शब्द है'।²⁸⁷

जीवन की अनुक्रियाओं को पर्यावरणीय परिस्थितियाँ प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरूपेण प्रभावित करती हैं और जीव भी उन्हें प्रभावित करता है। अतः जीव और पर्यावरण में परस्पर अन्तःक्रिया बनी रहती है। पर्यावरण में समाविष्ट विभिन्न अजैविक (भौतिक-रासायनिक) एवं जैविक दशाएँ परस्पर अन्तःक्रिया करते हुए समग्र रूप में जीव पर प्रभाव डालती हैं।²⁸⁸ इस प्रकार पर्यावरण अन्तःसम्बन्धों के जटिल समुच्चय के रूप में क्रियाशील रहता है। पर्यावरण के अन्तर्गत अन्य सजातीय-विजातीय जीवों का प्रभाव भी जीव पर पड़ता है; यही जैविक परिस्थिति है। जीव का जन्म-अस्तित्व-विकास-वृद्धि-विनाश सभी कुछ पर्यावरण पर ही निर्भर होता है। अतः पर्यावरण को जीवन की प्रथम शर्त कहा जा सकता है। जीव तथा पर्यावरण अविभाज्य रूप से अन्तःसम्बद्ध रहते हैं।

३.२ पर्यावरण का आधुनिक एवं वैज्ञानिक स्वरूप-

हमारे पर्यावरण का भौतिक एवं जैविक इतिहास लगभग साढ़े चार बिलियन वर्ष²⁸⁹ पुराना है। पृथ्वी के निर्माण तथा जीवनोपयोगी परिस्थितियों के विकास की क्रमिक एवं दीर्घ प्रक्रिया के परिणामस्वरूप लगभग साढ़े तीन बिलियन वर्षपूर्व एक-कोशीय जल-जीव के रूप में

²⁸⁶ The physical, chemical & biotic conditions surrounding an organism. (Mc. M.Dic. En.)

²⁸⁷ Environment: Biological term for the sum total of all the conditions, agencies & influences which affect the development, growth, life & death of an organism, species, race. (The Illustrated Encyclopedia of Modern Science. Vol. I, p.553.)

²⁸⁸ रघुवंशी अरुण, पर्यावरण तथा प्रदूषण, पृ. १.

²⁸⁹ A Billion- A million-millions, A Million=10,00,000 Thus a Billion=10,00,00,00,00,00,000

जीवन का प्रादुर्भाव हुआ। आज नाना रूपात्मक धरातल, ऋतुचक्र, वनस्पति वैविध्य, जंत-वैविध्य के विकास के उपरान्त धरती पर मानव का अवतरण हुआ।²⁹⁰

वैज्ञानिकों के अनुसार सौर प्रणाली की गैस-धूल आदि द्वारा साढ़े चार बिलियन वर्ष पूर्व पृथ्वी का निर्माण प्रारंभ हुआ। तत्पश्चात् क्रमशः पृथ्वी की परिक्रमण-कक्षा और घूर्णन-गति का निर्धारण हुआ, चंद्रमा की उत्पत्ति हुई, पृथ्वी का धरातल कठोर तथा ठण्डा हुआ और शनैः शनैः धरातल पर गर्त, ज्वालामुखी, पर्वतादि भौतिक संरचनाएँ बनीं। रासायनिक क्रियाओं के फलस्वरूप जल-वृष्टि-वायुमण्डल विकसित होते गए। लम्बे समय तक वर्षा होने से पृथ्वी के धरातल पर बने गर्त विशाल समुद्र का रूप लेते गए। तापमानादि के विचलन से पर्वत हिमावृत हुए, ऋतुचक्र का नियमन होने लगा। इस समस्त विकास-क्रम में अनुमानतः दो बिलियन वर्ष अवश्य व्यतीत हुए होंगे। इसी अवधि में पनपे जलीय बैक्टीरिया (सर्वारम्भिक जीव) की प्रकाश-संश्लेषणात्मक क्रियाओं से पृथ्वी के ऑक्सीजन-विहीन वायुमण्डल में ऑक्सीजन का समावेश होता गया और हानिप्रद सौर विकिरणों के अवरोधक ओजोनपर्त का निर्माण हुआ जिससे पृथ्वी जीवन के द्रुत विकास के लिए अधिक अनुकूल हो गई। अनुमान है कि यह कार्य २.५ से २ बिलियन वर्ष पूर्व तक सम्पन्न हुआ होगा। एककोशीय सूक्ष्म जल-जीवों में वनस्पति अथवा जन्तु का कोई भेद नहीं था। धीरे-धीरे बहुकोशीय जीव जल में विकसित होने लगे और लगभग एक बिलियन वर्ष पूर्व इनसे जलीय वनस्पति, मेरुदण्डयुक्त मछली इत्यादि जलचर जन्तुओं का प्रादुर्भाव हुआ। इस बीच समुद्रों में विद्यमान स्थलखण्ड महाद्वीपों का रूप धारण करते गए जिनका स्वरूप सतत परिवर्तनशील रहा। इन महाद्वीपों पर ५०० मिलियन वर्ष पूर्व स्थलीय वनस्पति आविर्भूत हुई और लगभग ४२० मिलियन वर्ष पूर्व उभयचर जन्तुओं ने जल के साथ-साथ थल पर भी विचरण प्रारंभ कर दिया। २३० से १२० मिलियन वर्ष पूर्व तक धरातल पर सरीसृप, डायनासौर, स्तनपायी जंतु, पशुपक्षी, पुष्प-पादपादि पनपे। तदुपरान्त २५ मिलियन वर्ष पूर्व तक का काल अत्यधिक जीव विविधता का काल रहा, जब वनस्पति एवं स्तनपायी जन्तु-वर्ग की असंख्य जातियाँ अस्तित्व में आईं। इस दीर्घकालिक पर्यावरण विकास-क्रम के उपरान्त

²⁹⁰ विशेष दृष्टव्य - Origin of Earth & Life; Continents- Adrift life's Triumph - by Larry Kohl. (National Geographic Vol. १६८, No. २ Aug, ८५, p. १४६-५१)

पर्यावरण मानव-विकासयोग्य बन सका और ढाई मिलियन वर्ष पूर्व मानव पृथ्वी के पर्यावरण का अंग बना ।

पर्यावरण-विकास का यह अतिसंक्षिप्त विवरण पृथ्वी पर मानव के विकसित होने की जटिल एवं सुदीर्घ पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। मानव सम्भवतः पर्यावरण का सर्वाधिक नवीन सदस्य है। पर्यावरण में उसके इतने विलम्ब से सम्मिलित होने का कारण यही है कि मानव अपने अस्तित्व के लिए पूर्वविकसित सभी पर्यावरणीय परिस्थितियों पर प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष रूप से निर्भर है। इस दृष्टि से वह पर्यावरण का सबसे परावलम्बी घटक है।

मानव सभ्यता का विकास अग्नि और कृषि जैसे आविष्कारों द्वारा आरंभ हुआ। प्रकृति के प्रांगण से उसने अपने अस्तित्व एवं सुख-सुविधा के लिए सब कुछ पाया। प्रकृति के रहस्यों से परिचय प्राप्त करते हुए उसने इस ज्ञान के बल पर प्रकृति को अपने अनुरूप ढाला तथा वैज्ञानिक प्रगति के अनन्त क्षितिज का स्पर्श किया। प्रकृति से उपार्जित उपकरण द्वारा वह सर्वनियन्ता-सर्वशक्तिसम्पन्न प्राणी है। अज्ञात प्राकृतिक कारणवश पृथ्वी के पर्यावरण के इतिहास में एकाधिक जातीय विलोपन (Mass-Extinction) घटित हो चुके हैं²⁹¹, परन्तु अब पर्यावरण सन्तुलन में मानव द्वारा अविवेकपूर्ण हस्तक्षेप के परिणामस्वरूप आगामी जातीय-विलोपन की संभावना स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर हो रही है।

मानव तो प्रकृति के विकास का चरमोत्कर्ष है, तब; क्यों आज वही उत्कर्ष, अपकर्ष का कारण बन गया है ? क्यों प्रकृति की इस विलक्षण कृति के कृत्य, प्रकृति को विकृति में परिणत करते जा रहे हैं? क्यों विकास, विनाश का पर्याय बन गया है ? क्यों प्राकृतिक सम्पदा का अकूत कोश रिक्त हो चला है ? क्यों यांत्रिकी का वरदान अभिशाप सिद्ध हो रहा है? क्या औद्योगिक क्रान्ति, श्वेत-क्रांति आदि क्रान्तियाँ भ्रान्तिमात्र बन कर रह गई हैं ? क्यों आज पर्यावरण-संकट मानव-जाति के भविष्य पर प्रश्नचिह्न बन कर खड़ा है?

²⁹¹ ६५०, २३०, ६५ मिलियन वर्ष पूर्व व्यापक जातीय विलोपन हुए ,वही, पृ.१४७

मानव तथा पर्यावरण के अन्तःसम्बन्धों के समस्या-पूर्ण हो जाने के सभी परोक्षापरोक्ष कारणों को खोजना और उनका निवारण करना आज मानव-सभ्यता की प्राथमिक आवश्यकता एवम् अनिवार्यता है।

सम्प्रति 'पर्यावरण-विज्ञान' को एक नवोदित विज्ञानधारा माना जाता है और 'प्रथम-पर्यावरण-वेत्ता' होने का श्रेय थियोफ्रेस्टस (Theophrastus, ४ शती ई.पू.) नामक यूनानी विचारक को दिया जाता है जिसने जीव-पर्यावरण-सम्बन्धों का विस्तृत विवरण प्रदान किया था।²⁹² पर्यावरण को जानने-पहचानने की प्रवृत्ति के प्रारंभिक सूत्र इससे कहीं पुरातन प्रतीत होते हैं। पर्यावरण-संकट की बेला में पर्यावरणीय ज्ञान के प्राचीन स्रोतों का अन्वेषण, उस ज्ञान की वर्तमान प्रासंगिकता का परीक्षण, उसकी सहायता से समस्या समाधान की। संभावनाओं का आकलन आवश्यक हो गया है। आधुनिक सन्दर्भ में प्राचीन पर्यावरणीय ज्ञान का विवेचन करने के लिए इस विषय का अधुनातन परिचय सांगोपांगरूपेण प्राप्त करना होगा।

३.३ पर्यावरण के जैविक कारक -

हमारा भूमण्डल अब तक ज्ञात एकमात्र जीवनयुक्त ग्रह है। जीव धरती के वासी ही नहीं, उसके पर्यावरण के महत्वपूर्ण कारक भी हैं।

पर्यावरण को अजैविक तथा जैविक वर्गों में विभक्त करने पर भी वस्तुस्थिति यह है कि अजीव और सजीव के बीच कोई निश्चित सीमारेखा अंकित करना संभव नहीं है।²⁹³ जीव भी अजीव की ही भाँति अणु-संघात (molecules) हैं²⁹⁴ तथा अजैविक पर्यावरण के विविध तत्वों के विशिष्ट संयोजन से उनकी संरचना होती है।²⁹⁵ जैविक तंत्र अजैविक पदार्थों का अत्यधिक जटिल संगठन ही हैं और वे भी निर्जीव-जगत् की प्रक्रियाओं में स्पष्टतः द्योतित होते भौतिक-

²⁹² Ramley F., The Growth of science, Uni. Colorado Stud. २६:३-१४

²⁹³ Mani M.S, Ecology & Evolution. p. २३.३१.

²⁹⁴ वही, p. २३; Savage JM. Evolution, p. ६.

²⁹⁵ वही, p. ६; Mishra, Plant Ecology, p. १४.

रासायनिक सिद्धान्तों के अनुरूप संचालित होते हैं।²⁹⁶ इस प्रकार निर्जीव और सजीव में भिन्नता मात्र जटिलता की है, जिसके परिणामस्वरूप सजीवों में कतिपय विशेषताएँ पाई जाती हैं जो अजैविक पदार्थों में नहीं होती।

जीव-जगत् का विस्तार एककोशीय जीवाणु और अमीबा से प्रारंभ होकर लगभग ३५०००० प्रकार की वनस्पतियों १०,००००० प्रकार के प्राणियों तक है।²⁹⁷ यह समस्त जीव-विविधता धरती पर वायुमण्डल-भूमण्डल-जलमण्डल में व्याप्त जैवमण्डल में समाई है, जो हमारे विशाल पर्यावरण की एक सूक्ष्म परत मात्र है।²⁹⁸

सूक्ष्म जीवाणु, वनस्पति, जीव-जन्तु और मानव - इन विभिन्न प्रकार के जीवों में असीम असमानता होने पर भी मूलभूत साम्य अवश्य है। यथा- अजैविक तत्त्व ग्रहण करके उन्हें जीवतंत्र (living system) के अंश के रूप में परिणत करने की क्षमता, पुनरुत्पादन (reproduction), बाह्य पर्यावरण के साथ अनुकूलन की क्षमता।²⁹⁹ जीव पर्यावरण में व्यक्ति (individual), जाति (species), समष्टि (population/सजातीयसमूह) समुदाय (community/भिन्न-भिन्न समष्टियों का समूह) के रूप में सम्मिलित होते हुए सभी जैविक-अजैविक पर्यावरण कारकों के साथ अन्योन्यक्रियाएँ करते हैं।

इस क्रम में जीवों के अन्य सजातीय जीवों से प्रतिस्पर्धा, शत्रुता, सहायता आदि ठीक उसीप्रकार विजातीय जीवों से परस्पर प्रतिस्पर्धा, एकदूसरे के साथ सहभोजिता (Commensalism), सहोपकारिता (Mutualism), परजीविता (Parasitism), सहजीवन

²⁹⁶ Living systems appear to be extremely complex organizations of nonliving materials. operating in accordance with same physico-chemical principles evident in the functioning of the inorganic world.- Savage J.M., Evolution, p. ५

²⁹⁷ शर्मा र. द. प्रकृति से छेड़छाड़ क्यों ?, पृ. ८०, शुक्र देव प्रसाद : पर्यावरण और हम, संकलित

²⁹⁸ Dicken & Pitts, Introduction to Cultural Geography, p. ९१.

²⁹⁹ Savage J.M., Evolution, p. ७-८.

(Symbiosis), भक्ष्य-भक्षक सम्बन्ध (Prey-predator relationship) इत्यादि सम्बन्ध स्थापित होते हैं।³⁰⁰

अ. सूक्ष्म जीव -

जैवमण्डल में सर्वत्र विद्यमान सूक्ष्मातिसूक्ष्म जीव यद्यपि इतने छोटे होते हैं। कि यंत्रों के बिना दृष्टिगोचर ही नहीं होते, तथापि वे पर्यावरण के बहुत प्रभावशाली उदाहरण मृदा-जीव मृत पेड़-पौधों, सूखी पत्तियों, जीवों के मृतावशेष तथा अपशिष्ट व्यर्थ पदार्थों का अपघटन करके अत्युपयोगी तत्व 'ह्यूमस' में परिवर्तन कर देते हैं, मृदा में वायु, जल के समावेश में सहायक बनते हैं, वायुमण्डलीय नाइट्रोजन को प्रत्यक्ष रूप से ग्रहण करके उसे पादप जड़ों द्वारा अवशोषित किये जाने योग्य नाइट्रेट्स आदि यौगिकों में परिवर्तित करते हैं।³⁰¹ इस प्रकार मृदा की उर्वरता के कारणभूत ये अकिंचन जीव वनस्पति, जीव-जन्तु, भौतिक पर्यावरण को अप्रत्यक्षतया प्रभावित करते हैं। प्रत्येक परितंत्र में अपघटक (Decomposer) के रूप में जीवों की उपस्थिति अपेक्षित होती है। व्यर्थ पदार्थों को उपयोगी बनाने की असाधारण जैविक क्षमता द्वारा ये पर्यावरण-सन्तुलन में अपूर्व योगदान देते हैं। मृदा में सूक्ष्म जीवों की विद्यमानता तापमान, आर्द्रता आदि कारकों से प्रभावित होती है। लाभप्रद सूक्ष्म जीवों के साथ ही कतिपय जीवाणु रोग उत्पन्न करने के कारण अन्य जीवों के लिए घातक भी होते।

ब. वनस्पति -

वैज्ञानिक अनुसंधानों द्वारा प्रमाणित है कि जीव-जन्तुओं से आकार तथा संरचना का विभेद होते हुए भी समस्त वनस्पति में जीवोचित जैविक क्रियाएँ होती हैं।³⁰² अतः हमारी पृथ्वी पर जल-थल में विकसित होने वाली अगणित वनस्पति-जातियों को जीव-जगत् में सम्मिलित किया गया है। जैविक कारकों के अन्तर्गत वनस्पति अन्य पर्यावरण-कारकों तथा जीवों को सर्वाधिक

³⁰⁰ Mani M.S., Ecology & Evolution, p. ३९-५२.

³⁰¹ कोछर पी. एल., पादप पारिस्थितिकी, पृ. २६-२७

³⁰² K.C. Misra ; Manual of Plant Ecology, p.९१

प्रभावित करने वाले जीव हैं। वृक्ष-लता, पादप-झाड़ी, घास, जलीय पादपादि अपनी सभी प्रक्रियाओं और पर्ण-पुष्प, शाखा-मूल, बीज-फल इत्यादि सभी अंगों द्वारा पर्यावरण को बहुत लाभान्वित करते हैं। हरित पादप में क्लोरोफिल नामक पदार्थ होता है, जिससे वे सूर्य के प्रकाश में वायुमण्डल से कार्बन-डाइऑक्साइड और भूमि से जल ग्रहण कर प्रकाश-संश्लेषण (Photosynthesis) की क्रिया द्वारा कार्बोहाइड्रेट्स के रूप में भोज्य-पदार्थ बनाते हैं तथा ऑक्सीजन का उत्सर्जन करते हैं। इसके विपरीत रात्रि में ऑक्सीजन ग्रहण कर कार्बन-डाइ-ऑक्साइड वातावरण में छोड़ते हैं।

इस प्रकार ये प्राणियों को प्राणवायु के प्रदाता ऑक्सीजन-कार्बन-डाइऑक्साइड जैसी महत्वपूर्ण गैसों का वायुमण्डल में सन्तुलन रखने के एकमात्र साधन हैं। मानव-सहित सभी जीवों की जीवनोपयोगी भोजन-सामग्री की प्राप्ति का मूल वनस्पति ही है। सभी भोजन-शृंखलाओं का आरम्भ वनस्पति से होता है। मृदा में खनिज तत्त्व, नाइट्रोजनादि पोषक-तत्त्व, प्रोटीन-विटामिन-कार्बोहाइड्रेट्स इत्यादि तत्त्व शाकाहारी जीव प्रत्यक्षतः तथा माँसाहारी जीव अप्रत्यक्षतः वनस्पति से ही प्राप्त करते हैं। सूर्य-प्रदत्त को खाद्य-पदार्थों के रूप में जीवों तक वनस्पति ही पहुँचाती है।

वनस्पति महत्वपूर्ण क्रिया है- वाष्पोत्सर्जन³⁰³ । मृदा से जड़ों द्वारा गृहीत जल को पत्तियों के उपर से उत्सर्जित करने की इस क्रिया द्वारा वायुमण्डलीय आर्द्रता बनी रहती है। छायादार एवं आर्द्रतादायक वृक्ष-समूह के समीपस्थ तापमान में ५° सेंटीग्रेड तक न्यूनता कर सकता है। वानस्पतिक आर्द्रता वर्षा के लिए अनुकूलता प्रदान करती है, क्योंकि शीतलवायु के सम्पर्क से मेघकण शीघ्र संघनित होकर बरसने लगते हैं।

वृक्ष-पादप ही नहीं, छोटी-छोटी घास भी अपनी जड़ों से वर्षा-जल के तीव्र प्रवाह में अवरोध करते हुए भूमि की अन्तःसवण-क्षमता की वृद्धि करती हैं। फलतः मृदीय आर्द्रता की रक्षा से भूगर्भीय जल-भण्डार में वृद्धि होती है। जड़ों की जल-शोधन क्षमता यथा-आँवला वृक्ष भूमिगत जल की शुद्धि में सहायक होती है। वनस्पति मृदा-संरक्षण का प्रभावशाली उपाय है।

³⁰³ दृष्टव्य - अ.1 , पर्यावरण कारकों में अन्तःसम्बन्ध : भोजन-शृंखला, भोजन-जाल , पृ.-२४

तीव्र वायु-प्रवाह के अवरोधक बनकर, वेगपूर्ण जल-प्रवाह को मंद बनाकर मृदा-क्षरण (Soil-erosion) की रोकथाम करने से, छाया द्वारा शीतलता बनाए रखने के कारण मृदीय आर्द्रता के वाष्पीकरण को घटाने तथा मृदाजीवों के लिए अनुकूलता प्रदान करने से, वानस्पतिक मृतावशेष प्रदान कर उत्तम उर्वरक बनने का साधन जुटाने से पेड़-पौधे मृदा की पोषकता में सहायक सिद्ध होते हैं।

सभी प्रकार के जीवों के आश्रय-स्थल के लिए वनस्पति किसी न किसी प्रकार अवश्य उपयोगी है। वनस्पति ईंधन, इमारती लकड़ी, पशु-चारा, वस्त्र, औषधि आदि के मानवोपयोगी संसाधन भी हैं। मनुष्य ने कृषि द्वारा इन पर नियंत्रण भी पाया है। अपने बहुविध प्रयोजनों की सिद्धि के लिए इनके प्रत्येक अंग, प्रत्येक प्रजाति एवं प्रत्येक समूह (वन-उपवन-कृषिक्षेत्रादि) का उपयोग करने का मनुष्य अभ्यस्त हो गया है।³⁰⁴

वनस्पति अन्य पर्यावरण-कारकों से प्रभावित भी होती हैं। सौर-प्रकाश प्रकाश-संश्लेषण के लिए, तापमान-आर्द्रता वाष्पोत्सर्जन की मात्रा निश्चित करने के लिए, वर्षा- जल या भूमिगत-जल पोषण के लिए, मृदा- स्थायित्व और पोषण के लिए, वायुमण्डल- जैविक क्रियाओं में उपयोगी गैसों प्राप्त करने के लिए वनस्पति की अनिवार्य आवश्यकताएँ हैं। स्थानविशेष के अक्षांश-ऊँचाई, पर्वतीय-ढाल आदि के आधार पर वहाँ की जलवायु और मृदा-प्रकार नियत होने के कारण तत्रस्थ वनस्पति-प्रकारों में भिन्नता पाई जाती है। प्रत्येक वनस्पति-प्रकार की ताप एवं आर्द्रता सहन करने की अधिकतम-न्यूनतम सीमा निश्चित होती है। तदनुसार वनस्पति की जड़ों, शाखाओं, पत्र-पुष्पादि की संरचना में अनुकूलन हो जाते हैं। यथा- उष्ण अति-आर्द्र क्षेत्रों में वर्षावन, अपेक्षाकृत कम आर्द्रता में मानसूनी-पर्णपाती-वन, उष्ण शुष्क प्रदेशों में घासवन या मरुस्थलीय वनस्पति, शीत- क्षेत्रों में शंकुधारी-वन, शीत-शुष्क क्षेत्रों में टूण्डा (छोटे पौधे, घास) नित्य-हिमावरण-क्षेत्रों में वनस्पति का अभाव।³⁰⁵

³⁰⁴ World Geography of Forest Resources; Ed. for the American Geo. Society. p. ४९-५२.

³⁰⁵ कोछर पी. एल., पादप पारिस्थितिकी, पृ. ५०-५१

वनस्पति के लिए प्राणी अत्यन्त सक्रिय पर्यावरण-कारक हैं। पशु-पक्षियों की चराई, टिड्डे-दीमक जैसे कीटों, वनस्पति-नाशक जीवाणुओं का वनस्पति-विकास पर प्रत्यक्षतया प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। भ्रमर - तितली आदि कीट परागण में और पशु-पक्षी प्रकीर्णन में सहायक होते हैं। जीव-जन्तुओं के अवशिष्ट खाद के रूप में पोषण प्रदान करते हैं। के छोटे जीव भी मृदीय उर्वरता-वृद्धि द्वारा प्रकारान्तर से वनस्पति वृद्धि करते हैं। पर्यावरण सर्वोपभोगी सदस्य के रूप में मानव वनस्पति के विनाश और संरक्षण दोनों ही दृष्टिकोण से प्रभावशाली होता है।

स. जीव-जन्तु-

इस वर्ग के अन्तर्गत छोटे-से कृमि से लेकर विशालकाय जन्तु तक सम्मिलित हैं प्राणि-शास्त्रीय दृष्टि से इन्हें अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है³⁰⁶ जिनमें से प्रमुख हैं- नभचर, जलचर, उभयचर, सरीसृप एवं स्तनपायी।³⁰⁷ वन्य एवं पालतू जन्तुओं के रूप में भी इनका वर्गीकरण प्रचलित है।³⁰⁸ सभी प्रकार के जन्तु जलवायु के प्रति अनुकूलन करते हैं। अतः भिन्न-भिन्न जलवायु क्षेत्रों में रहने वाले प्राणियों की विभिन्न विशेषताएँ होती हैं। जीव-जन्तु मूलतः शाकाहारी-माँसाहारी के वर्ग में विभक्त किये जाते हैं।

जल-वायु-आहार-आश्रयस्थल के लिए सभी प्राणी अपनी पर्यावरणीय परिस्थितियों पर निर्भर रहते हैं और पर्यावरण के अनुरूप अनुकूलन करते हुए अपनी अनुक्रियाओं से किसी न किसी रूप में उसे प्रभावित भी करते हैं। भोजन के लिए वनस्पति का उपयोग करने पर भी प्राणी (वन्य जीवादि) वनस्पति के सहायक हैं।³⁰⁹ अन्य जीवों का आहार बनते हैं, अपशिष्ट-जीवी बनकर पर्यावरण की शुद्धि भी करते हैं। वन्य जीवों के बिना वनों में वनस्पति विकास संभव नहीं है।

³⁰⁶ जलचर-थलचर-अचर-उभयचर; अण्डज-स्तनपायी; कशेरुकी-अकशेरुकी आदि।

³⁰⁷ Sharma P.D., Ele. of Eco., p. 382: Aves, Fishes, Amphibians, Reptiles, Mammals.

³⁰⁸ Robinson H., Monsoon Asia, p. ३९-४१.

³⁰⁹ द्रष्टव्य- अ. -1, पर्यावरण के कारक- जैविक (वनस्पति), पृ. १९

इस सहज जैविक-क्रम में जन्तु पर्यावरण को प्रदूषित भी करते हैं। यथा- श्वसन क्रिया में कार्बन-डाइऑक्साइड, जुगाली में मीथेन गैस के उत्सर्जन से वायु प्रदूषण होती है। सीमित मात्रा में इस प्रकार के प्रदूषण पर्यावरण-चक्र के माध्यम से स्वयमेव दूर हो जाते हैं। भोजन-शृंखला के अन्तर्गत प्राकृतिक रूप से जन्तुओं की संख्या स्वतः नियमित होती रहती है। यथा-- मृग की जनसंख्या बढ़ने पर वन में चराई से वनस्पति-विनाश, इससे अन्य शाकाहारी पशुओं और मृगों की संख्या में भोजन के अभाव के कारण क्रमिक ह्रास, इससे भक्षक सिंहादि की संख्या भी प्रभावित होती है। पर्यावरण में वन्य पशुओं के साथ-साथ मानव पालित पशु भी हैं। मानव ने अपनी सुविधा तथा उपयोगिता की दृष्टि से रेशम के कीड़े, मधुमक्खी जैसे कीटादि से लेकर गाय, भैंस, कुत्ते, घोड़े, हाथी, सिंह जैसे पशुओं को भी अपने अधीन बना लिया है। पशु-पक्षी सभी पर अपना नियंत्रण बनाया है।

द. मानव -

मूलतः मानव ही प्राणिवर्ग मुख्य सदस्य है जो पर्यावरण के एक अंगरूप में वायु-जल-आहार आदि प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पर्यावरण पर निर्भर रहता है और अपनी अनुक्रियाओं द्वारा उसे प्रभावित भी करता है। जैविक दृष्टि से पर्यावरण के साथ मानव का सम्बंध अन्य प्राणियों के समान ही है। किंतु अपने बुद्धिबल से उसने अपनी सुविधा के अनेक साधन जुटाए हैं, प्रतिकूल प्राकृतिक दशाओं को अपने अनुकूल बनाने के उपाय खोजे हैं। इन समस्त साधनों एवं उपायों के मूल संसाधन उसे प्राकृतिक पर्यावरण से ही प्राप्त हुए हैं। पर्यावरण पर मानव की अत्यन्त निर्भरता और उसे परिवर्तित-नियंत्रित करने की असीम क्षमता के कारण पर्यावरण के सभी कारकों से उसका अन्योन्य-सम्बन्ध अन्य प्राणियों की अपेक्षा भिन्न तथा व्यापक होता है।³¹⁰

पर्यावरण-कारकों में अन्तःसम्बन्ध पर्यावरण-कारकों के उपरोक्त विवेचन द्वारा इनमें जटिल अन्तःसम्बन्ध का परिचय प्राप्त होता है। इनमें प्रत्यक्ष अन्योन्य क्रिया होती है। यथा मृदा-पादप, वर्षा-वन, जलवायु-मृदाप्रकार एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। इसी प्रकार एक कारक अन्य

³¹⁰ दृष्टव्य अ.१, पर्यावरण-प्रदूषण और उसके कारण; पर्यावरण संरक्षण : दायित्व एवं महत्त्व, पृ. २६-३२

अनेक कारकों से प्रभावित होता है तथा अनेक को प्रभावित करता है। इससे कारकों में प्रत्यक्षाप्रत्यक्ष अन्तःसम्बन्धों का जटिल जाल बन जाता है।³¹¹

पर्यावरण के प्रत्येक अंग का अपना अलग महत्व है। पर्यावरण की कोई भी प्रक्रिया, परिस्थिति अथवा कारक निरर्थक नहीं। पर्यावरणीय कारकों की अन्तःक्रिया द्वारा पर्यावरण में विनाश एवं निर्माण का सानुपातिक चक्र निरन्तर चलता रहता है, जिससे स्वनियमन के सहज सामर्थ्य के कारण पर्यावरण में गुणात्मक तथा संख्यात्मक सन्तुलन बना रहता है। आदान-प्रदान का यह प्राकृतिक क्रम ऋण-मोचन का सिद्धान्त (Law of returns) कहलाता है, जिसका पालन सभी जैविक-अजैविक पर्यावरण कारक करते हैं।³¹²

अन्तःसम्बन्धों का अध्ययन नियंत्रित कारकों वाली प्रयोगशाला में नहीं, अपितु प्राकृतिक पर्यावरण में किया जाना चाहिए। यही कारण है कि पारिस्थितिकी को मूलतः 'जीव और उसके वासस्थान के अध्ययन का विज्ञान'³¹³ माना गया है। 'जिस भौतिक पर्यावरण में जीव की अनिवार्य आवश्यकताएँ पूरी होती हैं और जहाँ वह विशिष्ट प्रकार से अनुकूलन करने के लिए समायोजित हो जाता है- उन पर्यावरणीय परिस्थितियों के संश्लिष्ट संयोजन को वासस्थान (Habitat) कहते हैं'।³¹⁴ यथा जल मछली का, मृदा भूमि-कृमि का वासस्थान है। यह जीवनयुक्त अजैविक पर्यावरण होता है, अतः यह जैवमण्डल की सीमा में हो सकता है। सभी धरतीवासी जीवों के लिए यह धरती एक विशाल वासस्थान है, घर है।³¹⁵ किसी वासस्थान में अनेक जीव-जातियाँ निवास करती हैं, जो परस्पर अन्तःक्रिया करते हुए एक समुदाय के रूप में

³¹¹ Sharma PD, Ele of Eco., p.27: Bnj Gopal & Bhardwaj, Ele. of Eco., p.२०.

³¹² Sarala Devi, Revive our Dying Planet, p.३५.

³¹³ Oikologie = Oikos (home, habitat) + Logos (Study).

³¹⁴ Mani M.S., Ecology & Evolution, p.५७.

³¹⁵ Misra K.C., Plant Ecology, p.1.

अपने वासस्थान से भी अतःसम्बद्ध रहती हैं।³¹⁶ पर्यावरण अत्यन्त जटिल इकाई है। अतः इसका संश्लेषणात्मक अध्ययन अपेक्षित होता है।³¹⁷

पर्यावरणीय जटिलता के अध्ययन-विज्ञान के रूप में पारिस्थितिकी को 'परिस्थिति तंत्र/परितंत्र का विज्ञान' भी कहा जाता है।³¹⁸ 'जीव-समुदाय तथा अजैविक पर्यावरण परस्परश्रयी तंत्र परितंत्र (Eco-System) है'।³¹⁹

पारिस्थितिकी की शाखाएँ (Branches of Ecology)

पर्यावरण-अध्ययन के अन्तर्गत जीवों को, वासस्थान को, परितंत्र के रूप में उनके परस्परश्रयित्व को या मानवीय उपयोगिता को प्रधानता देने से पारिस्थितिकी के अनेक प्रकार-भेद हो सकते हैं।³²⁰ यथा- पादप पारिस्थितिकी (Plant Ecology), प्राणि-पारिस्थितिकी (Animal Ecology), जैवपारिस्थितिकी (Bio Ecology), वासस्थानीय-पारिस्थितिकी (Habitat Ecology), वन-पारिस्थितिकी (Forest Ecology), मरु पारिस्थितिकी (Desert Ecology) समुद्र-पारिस्थितिकी (Marine Ecology), भू-पारिस्थितिकी (Geo Ecology), मानव-पारिस्थितिकी (Human Ecology), प्रदूषण-पारिस्थितिकी (Pollution Ecology), संरक्षण-पारिस्थितिकी (Conservation Ecology) अनुप्रयुक्त पारिस्थितिकी (Applied Ecology), इत्यादि।

३.४ पर्यावरण-प्रदूषण और उसके कारण-

³¹⁶ Mani M.S., Ecology & Evolution, p. ५९.

³¹⁷ Southwick C.H.. Ecology. & Quality of our Environment.; Overview - xiii

³¹⁸ Maraler R. (1968. Spain) The Study of Ecosystems Perspectives in Ecological Theory. Univ. Chicago Press. Chicago. Brij Gopal & Bhardwaj Ele. of Eco., p.२.

³¹⁹ Southwick CH., Ibid, p. xii

³²⁰ वही, p.५-६ रघुवंशी, पर्यावरण तथा प्रदूषण, पृ. ३३-३७.

जल, भूमि, वायु प्रभृति प्राकृतिक पर्यावरण में अवांछित एवं हानिकारक पदार्थों का समिश्रण अथवा वांछित एवं उपयोगी पदार्थों की न्यूनता तथा अभाव पर्यावरण का प्रदूषण है। इसके परिणामस्वरूप पर्यावरण असंतुलित हो जाता है।³²¹

पर्यावरण में प्राकृतिक रूप से कुछ प्रदूषक तत्त्व मिलते हैं। यथा- अपघटन-प्रक्रिया में बनी हानिप्रद गैसों, मवेशियों की जुगाली से निकली मीथेन गैस, वायु से उड़ाई गई धूल या परागकण, प्राणियों के जल में मिले अपशिष्टादि।³²² ऊर्जा प्रवाह, पदार्थों का भू-जैव-रासायनिक चक्रीकरण आदि पर्यावरणीय प्रक्रियाओं द्वारा इन प्रदूषण का स्वतः शुद्धिकरण करने और सन्तुलन बनाए रखने की क्षमता के कारण प्राकृतिक परितंत्र का स्वनियमन होता रहता है। फलतः परितंत्र के जीव-सदस्यों की संख्या, पदार्थों की पुनःप्रयोग के लिए उपलब्धि भी स्वतः नियंत्रित रहती हैं और पर्यावरण असन्तुलित नहीं हो पाता। पर्यावरण की यह सामर्थ्य 'परितंत्र की साम्यावस्था' (Homeostasis of Ecosystem) कहलाती है।³²³

मानवसभ्यता का इतिहास जितना प्राचीन है, संभवतः उतना ही प्राचीन है मानव द्वारा प्राकृतिक क्रम में हस्तक्षेप का इतिहास। प्रारंभ में इसकी गति मंद रही अतः पर्यावरण अधिक क्षतिग्रस्त नहीं हुआ, किंतु विगत ३०० वर्षों में औद्योगिक प्रगति ने जीवन को सरल बनाया, उसके हानिकारक प्रभाव भी बहुत शीघ्रतापूर्वक एवं व्यापकरूप से विश्व में फैल गए हैं। अग्नि के आविष्कार के पश्चात् मानव ने हिंस्र पशुओं से आत्मरक्षा करने के लिए, कृषि-भूमि पाने के लिए वन-विनाश किया, पशु-पालन में अत्यधिक चराई से चरागाह नष्ट किये।³²⁴ इसका प्रभाव मृदा, वनस्पति, जलवायु आदि पर पड़ा। औजार बना कर प्राणियों के शिकार और पारस्परिक युद्ध भी उसके विनाशक कार्य थे। प्राचीन सभ्यताओं के समृद्ध विकास केंद्र आज सदियों बाद भी बंजर

³²¹ गर्ग राज., पर्यावरण और हम, पृ. १४,

³²² . Brij Gopal & Bhardwaj, Ele. of Eco. p. १७३.

³²³ Mc M. Die. En, p. २५२

³²⁴ Domestication of Plant and Animal १०,००० B.C. - ६,००० B.C. Southwick CH. १९७२ Ecology & the Quail of our Environment, p. ६७.

मरुभूमि के रूप में दृष्टिगत होते हैं।³²⁵ संभवतः इसका कारण पर्यावरण में मानव-क्रिया-कलापजन्य भीषण स्थानीय असन्तुलन ही रहा है।³²⁶

अठारहवीं सदी के बाद औद्योगिक क्रांति के प्रभाववश, वैज्ञानिक, यांत्रिकीकरण एवं ओद्योगिकी के कारण पर्यावरण प्रदूषित हो गया। विज्ञान के बल पर रोगाणुओं पर विजय प्राप्त की, प्रकृति के उपयोग के नवीन क्षेत्र खोजे कोयला वायुतल-विद्युत-आणविक ऊर्जादि को जैव ऊर्जा के यान पर प्रयुक्त करके यंत्रों द्वारा अपनी सुविधा के अनेक साधन बनाए, यातायात के तीव्रगामी साधन बनाए, सिंचाई और जलविद्युत के लिए नदी-जलाशय आदि पर बाँध निर्माण किया, प्राकृतिक परिवर्तनों से प्रभावित न हो। इसके लिए विशाल अट्टालिकाएं बनाई, उत्पादन-वृद्धि के लिए विशाल कारखाने लगाए, भूमि और ईंधन पाने के लिए वनों का सफाया किया, लाभप्रद जीवों को नियंत्रित कर या मार कर उनसे यथेष्ट संसाधन प्राप्त किए, कृषि-उपज बढ़ाने के लिए कीटनाशकों और रासायनिक उर्वरक का उपयोग किया। इस प्रकार मानव-निर्मित परितंत्र प्राकृतिक परितंत्र से नितान्त भिन्न हो गया। इन उपलब्धियों द्वारा प्रकृति-विजय के दंभ से मानव आत्मविभोर भी नहीं हो पाया। कि उसे इन उपलब्धियों का मूल्य चुकाना पड़ा। मानव ने प्रगति-पथ पर जो चरण बढ़ाया, उसके प्रारंभिक परिणाम चाहे मानवानुकूल रहे हों, किंतु दूसरी ओर प्राप्त अप्रत्याशित परिणामों ने विज्ञान की पर्यावरणीय दूरदृष्टि की पोल खोल दी।

ईंधन, इमारती लकड़ी, कागज-कृत्रिम तन्तु बनाने, औद्योगिक उत्पादन के लिए कच्चा माल जुटाने जैसे तात्कालिक लाभों के लिए वन-विनाश करते हुए मानव ने वनस्पति के पर्यावरणीय प्रभावों को पूर्णतया विस्मृत कर दिया। वन-विनाश के फलस्वरूप पृथ्वी-तापमान-नियमन, जल-चक्रीकरण, मृदा-संरक्षण, ऑक्सीजन-कार्बनडाइऑक्साइड का सन्तुलन, बाढ़ नियंत्रण की साधनभूत वनस्पतियाँ छिन गई, समय जलवायु चक्र अनियमित हो गये। असंख्य दुर्लभ एवं जीवनोपयोगी जड़ी-बूटियाँ लुप्त हो गई, वन्य जीवों का प्राकृतिक वासस्थान नष्ट होने

³²⁵ सुमेरिया, बेबीलोनिया, असीरिया, फोनेशिया, मिश्र, यूनान, रोम की प्राचीन सभ्यताएं ५,००० B.C. २०० A.D. वही, p.६८.

³²⁶ Theme of plant and animal destruction in economic history / FE २

Man's role in changing the face of the Earth. १९५५-५६, वही- p.६७

से वे भी नष्टप्राय हो गए। मानव-सभ्यता के आदि-केन्द्र, मानसिक शान्ति एवं सृजनशीलता के प्रेरक वनों के नाश से मानव-पर्यावरण की अपूरणीय क्षति हुई है।³²⁷

कोयला तेल या अन्य ईंधन जलाने से निकलने वाला धुआ, उद्योगों में प्रयुक्त रसायनों के वा मोटर-गाड़ियों में पेट्रोल-डीजल जलने से उत्पन्न गैसों वायु-प्रदूषण (Air Pollution) के मुख्य कारण हैं। विषाक्त गैसों और धुएँ से प्राणी तथा वनस्पति के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। कार्बन-मोनोऑक्साइड से खेत की ऑक्सीजनग्रहण क्षमता में ह्रास होता है, जिससे प्राणी की मृत्यु तक हो सकती है। हाइड्रोकार्बन ऑक्सीजन को ओक्साइड में बदल देते हैं जिससे अम्लीय-वर्षा हो सकती है। वायु-प्रदूषण का प्रभाव स्थानीय ही नहीं रहता, अपितु इससे पूरा परिमण्डल प्रभावित हो सकता है। उदाहरणार्थ रेफ्रिजरेटर वातानुकूलन यंत्र आदि से निकलने वाली क्लोरोफिल-कार्बन गैस वायुमण्डलीय आजोन परत को क्षति पहुँचाने लगी है, जिससे सूर्य की हानिप्रद पराबैगनी किरणें (Ultraviolet rays) पृथ्वी तक पहुँच कर कैंसर-चर्मरोग उत्पन्न करती हैं। वायु में कार्बनडाइऑक्साइड³²⁸ की ती मात्रा के कारण पृथ्वी के तापमान में वृद्धि, जलवायु में विश्वव्यापी-परिवर्तन, हिमावरण पिघलने से समुद्रजल में वृद्धि, समुद्रतटीय क्षेत्रों और छोटे निचले द्वीपों के जलमग्न होनेकी आशंका से वैज्ञानिक त्रस्त हैं।³²⁹

नगरों के मल-निकास, गन्दगी, कूड़े-करकट, अपशिष्ट पदार्थ, मृदा-क्षरण के कारण बहकर आने वाली तलछट, शवदाह आदि के कारण जल प्रदूषण (Water Pollution) होता है। रंग, साबुन-डिटर्जेंट, मिट्टी के साथ बहकर आने वाले कीटनाशक, रासायनिक उर्वरक आदि रासायनिक पदार्थ जल के स्वाभाविक गुणों को नष्ट कर देते हैं। मुख्यतम जल-प्रदूषक हैं। उद्योगों से जल में छोड़े गए अवशिष्ट पदार्थ। नदी-जलाशय आदि के बहूपयोगी तथा अल्पोपलब्ध³³⁰ जल में बैक्टीरिया-वृद्धि, ऑक्सीजन-गण-क्षमता में कमी के कारण जलीय वनस्पति एवं जीव नष्ट हो

³²⁷ Brij Gopal & Bhardwaj. Ele of Eco. p. १६७-६८.

³²⁸ कार्बनडाइऑक्साइड भूविकिरण का अवशोषण कर ताप को वातावरण से बाहर नहीं आने देती।

³²⁹ देश का पर्यावरण (संपा. अनुपम मिश्र) पृ. ७८-८४,

³³⁰ संयुक्त राष्ट्र जल सम्मेलन, १४ मार्च १९७७, मार डेल प्लाटा, अर्जेन्टीना, वही- पृ. २३

जाते हैं। समुद्र-जल का प्रदूषण³³¹ समुद्री-जल-जीवों, पक्षियों के लिए घातक होता है। दूषित जल से सिंचित भूमि की उपज भी विषाक्त हो सकती है। भूमिगत जल के प्रदूषण का कारण दूषित भूमि से अन्तःस्त्रवण होना है। विद्युत-उत्पादन केंद्रों में शीतलन के लिए जल का प्रयोग करके, गर्म हुए जल को फिर से नदी में छोड़ दिया जाता है। इस ऊष्मीय प्रदूषण (Thermal Pollution) से जल-जीवन प्रभावित होता है।³³²

सभी प्रकार का कूड़ा-करकट, औद्योगिक अपशिष्ट, प्लास्टिक, धातु आदि के कई स्थानीय भू-प्रदूषण (Land Pollution) करते हैं। कृषि भूमि के सुधार के आधुनिक उपाय अन्ततः भूमि के लिए हानिप्रद सिद्ध होते हैं- अत्यधिक सिंचाई से भूमि क्षारीय हो जाती है, रासायनिक उर्वरकों से लवणीयता में अनावश्यक वृद्धि होती है, कीटनाशक पदार्थ बहुमूल्य अदा-जीवों को भी नष्ट कर देते हैं। भूगर्भीय खनिज, कोयला आदि निकालते भवन निर्माणोपयोगी पत्थर और ईंटों के लिए मिट्टी प्राप्त करने के उद्देश्य से अन्धाधुंध उत्खनन के कारण भूमि की ऊपरी उपजाऊ परत विनष्ट हो जाती है।³³³

तीव्रगामी यातायात-साधनों के आकाशव्यापी शोर, मशीनों की आवाज ध्वनि-विस्तारक यंत्र, लोगों के स्वर, तेज संगीत इत्यादि स्रोतों से पर्यावरण में कोलाहल की मात्रा असहाय सीमा³³⁴ तक पहुंच जाने पर ध्वनि प्रदूषण का रूप ले लेती है। इससे मानसिक तनाव, शारीरिक क्षमता में ह्रास आदि गंभीर समस्याएँ उत्पन्न होती हैं।³³⁵

³³¹ तेल-वाहक समुद्री जल-पोतों के नष्ट हो जाने से सतह पर तेल फैल जाने से ,औद्योगिक,अपशिष्टों से समुद्र जल में प्रदूषण ।

³³² देश का पर्यावरण (संपा.अनुपम मिश्र) पृ.- १.२३-३६.

³³³ Brij Gopal and Bhardwaj. Ele of Eco, p. १६७,१७५

³³⁴ ९०डेसीबल से अधिक तीव्रता की ध्वनि हानिकारक। १५० डेसीबल से अधिक तीव्रता की ध्वनि से बहरापन

संभव। गर्ग रा., पर्यावरण और हम, पृ. ७ ।

³³⁵ वही, पृ. ६८-७४ .

मानव की वैज्ञानिक प्रगति के चिह्न रूप में अब अन्तरिक्ष भी रॉकेट, उपग्रह आदि के कूड़े से व्याप्त होने लगा है (Space Pollution)³³⁶ परमाणु ऊर्जा संयंत्र तथा परमाणु अस्त्र के प्रयोग से रेडियोधर्मी प्रदूषण (Radioactive Pollution) फैलता है, जिससे आगामी पीढ़ियों तक अविकसित मस्तिष्क तथा आनुवांशिक रोगों से ग्रस्त हो जाती हैं।³³⁷

अनियंत्रित जनसंख्या-वृद्धि, मानव-जनसंख्या का शहरों के रूप में एक ही स्थान पर केंद्रीकरण (Urbanization/शहरीकरण) पर्यावरणीय समस्याओं को और जटिल बना देते हैं। जनसंख्या बढ़ने से पर्यावरणीय संसाधनों की आवश्यकता, अपर्याप्तता तथा प्रदूषण में भी अभिवृद्धि होती है। सीमित संसाधनों के लिए विद्वेषपूर्ण प्रतिस्पर्धा, पारस्परिक संघर्ष का तीव्रतर होना स्वाभाविक है। पर्यावरण-प्रदूषण भावी विश्वयुद्ध अथवा परमाणु-अस्त्र-प्रयोग से भी अधिक विध्वंसकारी है। प्रदूषण की यदि यही गति रही तो पर्यावरण-सन्तुलन के विखण्डन से धरती पर सर्वनाश की आशंका का सत्य सिद्ध होना अवश्यंभावी है।

३.५ यज्ञों का पर्यावरण के साथ समन्वय –

भौतिक जगत् से भी एकात्मता का प्रतिपादन किया गया है। इस चराचर-जगत् में सर्वत्र ईश-तत्त्व विद्यमान है-

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।³³⁸

जड़ पदार्थों में भी परमतत्त्व का दर्शन जड़-जगत् को भी मानव के समान धरातल पर ले आता है³³⁹, जिससे स्वामित्व की संभावना ही नहीं रह जाती और सहज-साहचर्य भाव।

³³⁶ वही, पृ. ७५-७७.

³³⁷ वही, पृ. ५८-६३.

³³⁸ ईशोपनिषद्- १.१

³³⁹ ज्योतीषि विष्णुर्भुवनानि विष्णुर्वनानि विष्णुरियो दिशश्च ॥

स्थापित हो जाता है। जब चेतनाचेतन सभी तत्त्वतः एक हैं, तो संघर्ष कैसा ! एकात्मता की यह भावना सहयोग से एक सोपान आगे बढ़कर मानव-पर्यावरण के परस्पर अभेद और तादात्म्य की प्रेरणा देती है।

मानव अपने परिवार, समाज तथा पर्यावरण से जो भी ग्रहण करता है, वह ऋणरूप में ग्रहण करे। माता-पिता के पितृ ऋण से, गुरु के ऋषि ऋण से, प्राकृतिक शक्ति रूपी देवताओं के देव ऋण से मुक्त होने के लिए आदान के साथ विसर्जन का दायित्व भी निभाना होगा। ऋणत्रय से उऋण होने के लिए प्रतिदान की प्रक्रिया पंच महायज्ञ³⁴⁰ के रूप में जीवनचर्या में सम्मिलित की गई। पितृ-यज्ञ एवं ऋषि-यज्ञ में गृहीत तत्त्वों (माता-पिता से जन्म; ऋषिजन से ज्ञान) को परिवार एवं समाज में पुत्र एवं शिष्य के माध्यम से आगे बाँट देने का विधान है। देव-यज्ञ में पंच महाभूत सूर्यचन्द्रादि प्राकृतिक शक्तियों अर्थात् प्राकृतिक पर्यावरण के प्रति कृतज्ञतापूर्वक यथेष्ट दान का प्रतीक प्रस्तुत किया गया है। अग्नि में विधिवत समर्पित आहुति से वृष्टि - वृष्टि से अन्न - अन्न से प्रजा के सृष्टिक्रम में होम-स्वरूप देवयज्ञ सहायक होते हैं।³⁴¹ अपनी आवश्यकताओं को सीमित रखते हुए अन्यान्य अकिंचन प्राणियों के भरण-पोषण का दायित्व, भूत-यज्ञ द्वारा तथा अतिथि स्वरूप अन्य मनुष्यों के भरण-पोषण का दायित्व, नृ-यज्ञ द्वारा पूर्ण करने का विधान है। संसारगत विविध सम्पदाओं को ईश्वरप्रदत्त मान कर, स्वयं स्वामिभाव न रखते हुए मानव सुखोपभोग करे, किंतु अपनी आवश्यकतानुसार ही; आवश्यकता से अधिक का ग्रहण चोरी जैसा दण्डनीय अपराध है।³⁴² मानव के प्रयास से

नद्यःसमुद्राश्च स एव सर्व यदस्ति यन्जास्ति च विप्रवर्यः । विष्णु. पु., २.१२.३८

³⁴⁰ ऋषयः पितरो देवा भूताव्यतिथयस्तथा॥

आशासते कुटुम्बिभ्यस्तेभ्यः कार्यं विजानता॥ मनुस्मृ., ३.८०.८१

देवानृषीन् नृभूतानि पितृणात्मानमन्वहम् ।

स्ववृत्त्यागत वित्तेन यजेत पुरुषं पृथक् ॥ भाग. पु., ७.१४.१५

³⁴¹ देवकर्मणि युक्तो हि विभर्ति इदं चराचरम् ।

अग्नौ प्रास्ताहुतिः सम्यगादित्यमुपतष्ठते।

आदित्याज्जायते वृष्टिवृष्टान्तं ततः प्रजाः ॥ मनु., ३.७५.७६

³⁴² यावद् धियेत जठरं तावत् स्वत्वं देहिनाम् ॥

आदान-प्रदान का क्रम निर्बाध गति से चलता रहे, तो समाज तथा प्रकृति में अव्यवहित संतुलन बना रहेगा। प्राकृतिक सन्तुलन में मानव ही हस्तक्षेप कर सकता है, अतः उसे ही सर्वाधिक सजग-सावधान रह कर ऐसे विनाशकारी हस्तक्षेप से विमुक्त रहना चाहिए। ऋण-मोचन और देय के विसर्जन के लिए आवश्यक त्याग-भावना आत्म संयम के बिना विकसित नहीं हो सकती। सुखोपभोग का पूर्ण निषेध कुण्ठा का कारण बन सकता है। और भोग-लिप्सा का अतिरेक विनाशकारी हो सकता है। मानव-जीवन में भोग और त्याग का सन्तुलन स्थापित करने के लिए वर्ण-आश्रम-पुरुषार्थ जैसी मौलिक अवधारणाओं की उद्भावना की गई। उदाहरणार्थ वर्ण-व्यवस्था द्वारा समाज में प्रत्येक व्यक्ति की योग्यता के अनुरूप कार्य-विभाजन के माध्यम से सृष्टि में प्रत्येक तत्त्व तथा प्राणी के समुचित महत्त्व के नियम की अनुपालना की गई। आत्मा की अनश्वरता, कर्म-सिद्धान्त, पुनर्जन्म इत्यादि दार्शनिक मान्यताएँ तात्कालिक लाभ की अपेक्षा दूरगामी प्रभावों को विचारने की प्रवृत्ति जागृत करती हैं, क्षुद्र स्वार्थों की व्यर्थता के प्रति सजगता उत्पन्न करती हैं। त्याग-तप-तपोवनपरक भारतीय संस्कृति भोगविलास और भौतिकता के अतिचार से बचाव के लिए अनेक व्यवहार-सूत्र मानव के समक्ष प्रस्तुत करके उसे पर्यावरण के प्रति कर्तव्याकर्तव्य-विवेक से समन्वित बनाती है। तपोवन वन्य-जीवन के अभयारण्य, आत्मसंयम के प्रेरणा-स्रोत तथा मानव-प्रकृति साहचर्य के अनुकरणीय आदर्श हैं।

ईश्वर-सृजित और ईश्वर-वासित सारी सृष्टि के अन्तर्गत मानव के विशिष्ट स्थान³⁴³ को अनेकशः अंगीकार करने पर भी मानवेतर जगत् से मानव की एकात्मता कदापि उपेक्षित नहीं हुई है। प्रकृति को मानव-भोग्यामात्र समझने की अपेक्षा पशु-पक्षी, पेड़-पौधों, भूमि-जल।आदि को दियता से सम्पृक्त कर भारतीय धर्म इन सब के प्रति पवित्रता और कृतज्ञता की भावना का विस्तार कर देते हैं। पशु-पक्षियों को देवताओं का वाहन बनाकर,

अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ॥ देवीभा.महा., ७.१४.८ तथा वही ७.१४.९-१०

343 अ. एक-द्वि-त्रि चतुष्पादों बहुपादस्तथापदः ।

बहवः सन्ति पुरः सृष्टास्तासां मे पौरुषी प्रिया ॥ देवीभा.महा., ११.७.२२

ब. तेषु भगवान् राजरतारतन्यन वर्तते ।

तस्मात् पात्रं हि पुरुषो यावनात्मा गरोसते ॥ देवीभा.महा., ७.१४.३७, ३८

वृक्ष-पादपादि में चैतन्य ही नहीं, देवताओं का वास मानकर उन्हें पूज्य बनाया गया है।³⁴⁴ पृथ्वी और नदियों को मातृवत् स्वीकार करने पर पुत्रवत् मानव उन्हें विकृत-शोषित करने के लिए कथमपि उद्यत नहीं होगा। इस प्रकार प्रकृति का संरक्षण उपयोगिता के लिए नहीं, नैतिक दायित्व के रूप में करने का आदर्श भारतीय संस्कृति की विलक्षण विशिष्टता है। अहिंसा, अपरिग्रह, परोपकार के प्राच्य आदर्शों को साकार करने पर पर्यावरण के विनाश और अनावश्यक शोषण की आशंका निर्मूल हो जाएगी। प्राच्य तथा प्रतीच्य विचारधारा में स्पष्ट वैभिन्नता दिखाई देती है। पाश्चात्य विद्वान् सामर्थ्यवान् के अस्तित्व (Survival of the fittest) का सिद्धान्त प्रतिपादित करते हैं, जबकि भारतीय मनीषी विद्वान् सर्वसाधन-सम्पन्न को सबसे निर्बल-असहाय जीवों के संरक्षण एवं पोषण का भार भूत-यज्ञरूपेण सौंपते हैं।³⁴⁵ वर्तमान युग में अधिकारों और उनके लिए संघर्ष को ही प्रमुखता दी जाती है, किन्तु प्राचीन भारतीय परम्परा में कर्तव्यों के स्पष्ट विभाजन³⁴⁶ पर बल दिया गया है। सब कर्तव्यनिष्ठ हे तो सबके अधिकार स्वतः ही पूरे होते जाएँगे। पाश्चात्य विचारकों एवम भारतीय विद्वद्वरणे । द्वारा एक मत से मानव को सृष्टि का केंद्रीय बिंदु स्वीकार करने पर भी प्रतीच्य मतानुसार मानव के लिए ही संपूर्ण पर्यावरण का निर्माण हुआ है और वह प्रकृति का स्वामी है। जबकि प्राच्यमतानुसार मानव-स्वरूप केन्द्र-बिंदु का विस्तार समस्त पर्यावरण के रूप में अविच्छिन्नतया हो रहा है। इस प्रकार प्रतीच्य दृष्टि मानव-पर्यावरण के संकेन्द्रीय सम्बन्ध की पक्षधर है, जबकि प्राच्य दृष्टि इनमें अखण्डमण्डलाकार सम्बन्ध का दर्शन करती है। मानव-पर्यावरण सम्बन्ध का प्राच्य मत भोगवादी सभ्यता से उपजी पर्यावरणीय समस्याओं के निराकरण में सहायक सिद्ध हो सकता है।

³⁴⁴Dwivedi & Tiwari , Environmental Crisis and Hindu Religion. p.४७;६८.

³⁴⁵ पिपीलिकाः कीटपतंयाकाद्या बुभुक्षिताः कर्म-निबन्ध-बद्धाः ॥

प्रद्यात ते तृप्तिमिदं मयान्तं तेभ्यो विसृष्टं सुखिनो भवन्तु ॥ विष्णु पु. ३.११.५० तथा वही, ३.११.४९,५५

³⁴⁶ आचार संहिताएँ- मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति आदि।

चतुर्थ अध्याय

वैदिक वाङ्मय में यज्ञ एवं चराचर जगत्

तृतीय अध्याय में पर्यावरण के स्वरूप का उल्लेख कर यह प्रमाणित किया गया है कि वैदिक चिन्तन में पर्यावरणीय चेतना का पूरी तरह समावेश था। इस अध्याय में इन तत्वों का यज्ञ के साथ वेदों में निहित समवाय सम्बन्ध का विवेचन- किया है।

४.१ यज्ञ एवं पृथ्वी –

पृथ्वी पर्यावरण का महत्वपूर्ण अंग है। प्राणी जिस पर निवास करते हैं और जिसके आधार पर जीवन पाते हैं, वह भूमि निश्चय ही वन्दनीय एवं उपयोगी है। इसीलिये पृथ्वी को माता कहकर नमन करने का संकेत वेदमन्त्रों में है। मनुष्य प्रातःकाल उठकर सर्वप्रथम भूमि पर अपने पैरों को रखता है और मन ही मन क्षमायाचना करता है कि – हे ! भूमि माता इस पादस्पर्श कर्म के लिये क्षमस्व मे; पृथ्वी इस चराचर जगत् को धारण करने वाली है, अतः अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में कहा है।

भूमे मातरि धेहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम् ॥

संविदाना दिवा कवे श्रियां मा धेहि भूत्याम् ॥³⁴⁷

हे धरती माता ! मुझको कल्याणकारी मति के साथ सुप्रतिष्ठित बनाए रख। हे गतिशीले ! (जो चलती है या जिस पर हम चलते हैं) प्रकाश के साथ मिली हुई तू मुझको श्री और विभूति में धारण कर। पृथ्वी के अनेक पर्यायवाची शब्द हैं। वैदिक कोश निघण्टु में २१ नामों का उल्लेख है। यथा - गौ, ग्मा, उमा, क्षा, क्षमा, क्षमा, क्षोणी, क्षिति, अवनि, उर्वी, पृथिवी, मही, रिपः,

³⁴⁷ अथर्व.- १२, १.६३

इला, भू, भूमि, पूषा, गातु, गोत्रा, अदिति, निऋति । तैत्तिरीय संहिता में 'अप्रथत पृथिवी' कहा गया है । पृथ्वी इसलिये कहलाती है क्योंकि फैलाई गयी है। महर्षि यास्क ने इसी की पुष्टि की है 'प्रथनात् पृथिवीत्याहुः'³⁴⁸ आचार्य सायण ने भी ऋग्वेदीय व्याख्या में कहा है – 'प्रथनवती पृथिवी' क्योंकि इसका विस्तार है इसलिए इसे पृथिवी नाम से जाना जाता है।

पृथ्वी की विशेषता बताते हुए अथर्ववेद में कहा है –

यस्यामापः परिचराः समानीरहो रात्रे अप्रमादं क्षरन्ति ॥

सा नो भूमिभूरिधारा पयो बुहामथो उक्षतु वर्चसा ॥

अर्थात् - जिस पृथ्वी की पीठ पर सबकी सेवा-सुश्रुषा करने वाली नदियां दिन-रात प्रमाद रहित होकर बह रही हैं, वह भूमि गौ के सदृश स्नेह के साथ हमारे लिये जल की धाराएं, अल्ल के ढेर प्रदान करती हैं। पोषक तत्वों से भरपूर भूमि जिसमें नाना प्रकार के धान्य प्राप्त किये जाते हैं। एवं जल प्राप्त किया जाता है, उस भूमि को रासायनिक खाद शक्तिहीन बनाती है, उपजाऊ शक्ति सोख लेती है, भूमि दूषित हो जाती है, कृमियों की भरमार रहती है। तब उसके शोधन का कार्य अग्निहोत्र करता है। अग्निहोत्र का कार्य बताते हुए मन्त्र में कहा है –

यज्ञस्य दोहो विततः पुरुत्रा सो अष्टधा दिवमन्वाततान।³⁴⁹

अर्थात्- यज्ञ में जली हुई हवि बहु प्रकार की होकर फैल जाती है तथा आठ प्रकार के विभागों में विभक्त पृथ्वी से लेकर द्यौलोक तक फैल जाती है । यह फैलकर औषध का काम करती है –

अग्निष्कृणोतु भेषजम् ।³⁵⁰

³⁴⁸ निरुक्त. - १.४.७

³⁴⁹ यजु. - ८.६२

³⁵⁰ अथर्व. - १०.१६.३

अर्थात् अग्निहोत्र, ज्वाला, धूम्र एवं वायु की सहायता से प्रत्येक पदार्थ में प्रविष्ट होकर औषध का कार्य करता है। यह अग्निहोत्र पदार्थों के दोषों को दूर करने की सक्षम प्रक्रिया है। यज्ञ से उठता हुआ सुगन्धित धूम्र अंतरिक्ष से आगे बढ़कर द्युलोक तक पहुंच जाता है। यह धूम्र वायु को शुद्ध करके मेघों के माध्यम से जल को पवित्र कर देता है। वर्षा का शुद्ध जल पृथ्वी के मलों को धोकर स्वच्छ करता है और पर्जन्य पिता के बरसने से यह भूमि माता शस्य-श्यामला होकर नाना वृक्षों, वनस्पतियों एवं जीवों को अपने गर्भ से बाहर कर देती है। अथर्ववेद में कहा है –

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः ॥

पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु ॥³⁵¹

पर्यावरणीय महत्व की दृष्टि से अथर्ववेद का पृथिवीसूक्त विशेष उल्लेखनीय है। जिसके लगभग सभी मन्त्रों में पृथ्वी के सभी रूपों, लाभों एवं महत्व का प्रतिपादन किया है-

यस्यामिदं जिन्वति प्राणदेजत् सा नो भूमिः पूर्वपेये दधातु ॥³⁵²

जिस भूमि पर समुद्र, नदी और, जल-धाराएं तथा वनस्पतियां उत्पन्न हुई, जिस पर प्राण लेता हुआ यह समस्त प्राणि-जगत् चल रहा है, वह हमें श्रेष्ठ रक्षा योग्य पथ पर स्थित करे।

सा नो भूमिर्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः ।³⁵³

जिस प्रकार माता अपने पुत्र को दूध पिलाती है, उसी प्रकार यह भूमि हम सबका पालन-पोषण करती है।

विश्वंभरा वसुधानी प्रतिष्ठा हिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी।

वैश्वानरं विभ्रति भूमिरग्निमिन्द्र, ऋषभा द्रविणे नो दधातु ॥³⁵⁴

³⁵¹ अथर्व. - १२.१.१२

³⁵² अथर्व. - १२.१.३

³⁵³ अथर्व. १२.१, १०

अर्थात् वह भूमि हमें जीवन और संपदा प्रदान करने वाली हो – जिससे सबका पोषण होता है, जिसमें सब प्रकार के अन्न उत्पन्न होते हैं, जो सब जीवों का दृढ़ आधार है, जिसमें सब प्रकार की सम्पदा छिपी हुई है, जो समस्त जगत् को अन्न देती है तथा सबका पालन करती है और बुद्धिमानों व श्रेष्ठ पुरुषों का पोषण करती है।

ऋग्वेद में पृथ्वी को उत्तम सुख देने वाली विस्तीर्ण, बहुत प्रसार युक्त, पीडित न करने वाली उत्तम परिचारिका तथा माता के समान पुत्र को अपने आच्छादन से आच्छादित करने वाली कहा है –

उपसर्प मातरम् भूमिमेतामुख्यचसं.....।³⁵⁵

माता पुत्रं यथा सिच्यामेनं.....।³⁵⁶

ऋग्वेद में भूमि संरक्षण संबन्धी विभिन्न प्रकार के विचार उपलब्ध हैं। यथा –

अजो न द्यां दाधार प्रथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः ।³⁵⁷

सत्य लक्षणों से युक्त ज्ञान से प्रकाशित मन्त्रों से भूमि को धारण करने का निर्देश विद्वानों को दिया गया है। पृथ्वी के अत्यधिक संरक्षण का महत्व प्रतिपादन आधुनिक पर्यावरणविद् ने भी किया है। भूमि या मिट्टी सर्वाधिक मूल्यवान् संसाधन हैं क्योंकि विश्व के ७१% खाद्य पदार्थ

³⁵⁴ अथर्व. - १२.१.६

³⁵⁵ ऋक्. - १०.१८.१०

³⁵⁶ ऋक्. - १०.१८.११

³⁵⁷ ऋक्. - १.६३.३

मिट्टी से उत्पन्न होते हैं, यह संसाधन इसलिये और भी महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि सम्पूर्ण ग्लोब के २% भाग में ही कृषि योग्य भूमि है। अतः भूमि या मिट्टी एक अति सीमित संसाधन है। खाद्य पदार्थों की समुचित उपलब्धि के लिये इस सीमित संसाधन को प्रदूषण से बचाना ही आज की सबसे बड़ी चुनौति है।

अथर्ववेद में भूमि को उर्वरा बनाने का संदेश देते हुए मनुष्यों को समृद्ध बनाने वाली भूमि का उल्लेख आता है। अतः यह स्पष्ट होता है कि कृषकों को अपनी भूमि को उर्वरा बनाने का बहुत ध्यान रहता था। वैदिक संस्कृति में गोबर को सर्वोत्तम खाद कहा गया है। अथर्ववेद में कहा है - करीषिणी, फलवती, स्वधाभिराम, गोबरप्रयुक्त खेती ही उत्तम फलवती, मधुर अन्न उत्पन्न करने वाली कामधेनु के समान होती है -

करीषिणीं फलवतीं स्वधामिरां च मे गृहे।

औदुम्बरस्य तेजसा धाता पुष्टिं दधातु मे ॥³⁵⁸

सभी व्यक्तियों को एक दूसरे से बांधने वाली सबसे पहली ग्रन्थि कदाचित् कृषि है। मनुष्य की आन्तरिक शक्तियां सबसे पहले भोजन व्यवस्था के लिये क्रिया में आती हैं और मनुष्य ने सर्वप्रथम जिस कला का आश्रय लिया था, वह निश्चय ही कृषि होगी।

ऋग्वेद में कहा है -

युनक्त सीरा वियुगा तनुध्वं कृते योनौ वपतेह बीजम् ।

गिरा च श्रुष्टिः सभरा असन्नो नेदीय इत्सृण्यः पक्कमेयात् ॥³⁵⁹

अर्थात् आप लोग हलों को जोतो, जुए को विस्तृत करो, समय में बीज बोओ। वेदवाणी के गान के साथ हमारी फसल हरी-भरी और पुष्ट होवे। लोग पके धान्य के पास आवें।

³⁵⁸ अथर्व. - १९.३१.३

³⁵⁹ ऋक्. - १०.१०१.३

इसी कारण राजा को स्पष्ट आदेश है 'नो राजा नि कृषिं तनोतु' - राजा हमारे लिये कृषि को सदैव बढ़ाए। कृषि करने से खाद्य समस्या का हल होगा। आज खाद्य समस्या को कई तरह से उलझाया जा रहा है। कहा जाता है कि तालाब बनाकर उनमें मछलियां पालो, मुर्गी पालन कर अन्न की समस्या हटाओ आदि, किन्तु गौएं पालकर अन्न की समस्या हल करने का प्रचार नहीं किया जाता। गौसदन उतने नहीं खोले जाते जितने मुर्गी एवं मत्स्य पालन केन्द्र बनाए जाते हैं। कृषि के लिये गौ एवं बैलों की आवश्यकता है। यजुर्वेद में पृथिवी माता को नमन करते हुए -

नमो मात्रे पृथिव्यै त्वा क्षेमाय त्वा रययै त्वा पोषाय त्वा।³⁶⁰

हे भूमि माता! तुम्हें प्रणाम हो। कृषि, अपनी रक्षा एवं पोषण के लिये हम तुम्हें स्वीकार करते हैं।

स्योना पृथिवी भवानृक्षरा निवेशनी।

यच्छा नः शर्म सप्रथः।³⁶¹

अर्थात् कण्टकों से रहित अत्यन्त सुखद, अति विस्तारयुक्त यह भूमि हमारे लिये उत्तम सुख को प्रदान करे-

शं न उरुचि भवतु स्वधाभिः।³⁶²

अन्नादि से युक्त पृथिवी हमारी शान्ति के लिये हो। यजुर्वेद के मन्त्रों में पृथिवी को यज्ञ द्वारा समर्थ बनाने की कामना की गई है -

पृथिवी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।³⁶³

आगे भी कहा है -

अश्मा च मे मृतिका च मे गिरयश्च मे पर्वताश्च मे सिकताश्च मे वनस्पतयश्च मे

³⁶⁰ यजु. - ५.२२

³⁶¹ यजु.- ३६.१३, ऋक्. - १.२२.१५

³⁶² ऋक्. - ७.३५.३

³⁶³ यजु.- १८.१८

हिरण्यं च मेऽयश्च मे लोहं च मे सीसं च मे त्रपु च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ।³⁶⁴

अर्थात् इस पृथ्वी में स्थित पत्थर, हीरा आदि रत्न, मिट्टी, छोटे-बड़े पर्वत तथा उसमें होने वाले पदार्थ, रेत वनस्पतियां-वृक्षादि, सोना-चांदी, नीलमणि आदि लोहा, तांबा, पीतल, सीसा, जस्ता, लाख आदि सभी यज्ञ से समर्थ हों। अन्यत्र पृथिवी को भस्म से भरने का भी आदेश है –

पृथिवी भस्मनापूण ।³⁶⁵

यज्ञ की भस्म में जो क्षार तत्व है, वह पृथ्वी से प्राप्त होता है। यजुर्वेद में यह भी कहा गया है-

सं ते वायुर्मातरिश्वा दधात्तूतानाय हृदयं यद्वित्रस्तम् ॥

यो देवानां चरसि प्रणयेन कस्मै देवाय वषडस्तु तुभ्यम् ॥

अर्थात् उत्तान लेटी हुई भूमि का हृदय यदि क्षतिग्रस्त हो गया है, उसकी उपजाऊ शक्ति कम या समाप्तप्राय हो गई है, तो कुछ समय तक उसमें खेती न करके उसे खाली छोड़ देना चाहिए जिससे शुद्ध वायु- मातरिश्वा अंतरिक्ष संचारी पवन उसमें रश्मि, वर्षा के द्वारा पुनः शक्ति संधान करे। इस प्रकार पृथ्वी के प्रदूषण को भी 'यज्ञ' द्वारा दूर किया जा सकता है। यज्ञ के द्वारा भूमि की उपजाऊ शक्ति बढ़ कर अधिक कृषि का उत्पादन हो सकता है। भू शुद्धि अर्थात् भूमि प्रदूषण के निवारण हेतु अनेक उपाय वैदिक साहित्य में उपलब्ध हैं। उन उपायों में यज्ञ महत्वपूर्ण है जिससे पृथ्वी सस्यादि से पुष्ट होकर सुख देने वाली होती है –

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम् ।

पिपृताम् नो भरीमभिः ॥³⁶⁶

³⁶⁴ यजु. - १८.१३

³⁶⁵ यजु.- ६.२१

³⁶⁶ ऋक्.- १.२२.१३

विस्तृत धुलोक तथा भूमि, हमारे इस यज्ञ का सेवन करे। यज्ञ से पोषण प्राप्त कर हमारा भरण-पोषण करे।

यज्ञ इन्द्रमवर्धयद् भूमिं व्यवर्तयत् । चक्राण ओपशं दिवि ॥³⁶⁷

यजमान के द्वारा अनुष्ठेय यज्ञ से इंद्र देव वृष्टि की शक्ति को बढ़ाता है और भूलोक को अन्नादि संपदाओं से परिपुष्ट करता है। इस मन्त्र के 'सोमेन पृथिवी मही' पर भाष्यकार का अभिमत है –

आहुत्यात्मनाग्नौ हुतेन भूमिः महती भवति ।

आहुत्या वृष्टिद्वारेण सस्यादिसम्पत्तेः ।³⁶⁸

अग्नि में घी, सामग्री की हवि देने से भूमि महती होती है, वर्षा द्वारा अनाजादि प्रवृद्धि के कारण औषधि से प्रवर्धित पृथिवी बलवती होती है।

पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृहं पृथिवीं मा हिंसी ।³⁶⁹

पृथ्वी को प्राप्त करने की इच्छा करो, उसको दृढ़ करो, उसकी हिंसा मत करो ॥

यस्यां समुद्र उत सिन्धुरापा नानावीर्या औषधीर्या बिभर्ति ।

गिरयस्ते पर्वता हिमवन्तोऽरण्यं ते पृथिवी स्योनमस्तु ॥³⁷⁰

इस पृथ्वी पर हिलोरे मारता हुआ समुद्र, प्रदूषण रहित प्राणदायिनी औषधियां हैं, हिममण्डित पर्वतमालाएं हैं। ऐसी शस्य श्यामला धरती हम प्राणियों के लिये सुखदायी हो। यह भूमि अत्यन्त महती है। इसकी संज्ञा 'सघस्थ' है अर्थात् यह सबकी समान पितृभूमि है, जहां सब मिल-जुल कर साथ रहते हैं। इसका क्षेत्र बड़ा विस्तृत है-

³⁶⁷ ऋक्. - ८.१४.७

³⁶⁸ ऋक्. - १०.८५. १, २

³⁶⁹ यजु. - १३.८

³⁷⁰ अथर्व. - १२.१.३

महत् सधस्थं महती बभूविथ ।³⁷¹

भूमि पर रहने वाली पशु सम्पत्ति भी मनुष्य के लिये उतनी ही आवश्यक है, जितनी कि हवा, जल, अन्न इत्यादि । यह पृथिवी गौवों, घोड़ों, पक्षियों के निवास का अलग-अलग विशिष्ट स्थान हैं गवामश्वानां वयसश्च विष्ठा ।³⁷²

भूमि उन वृक्ष, वनस्पतियों की भी प्रतिष्ठा है, ऐसी प्रतिष्ठा कि वे एक स्थान पर महत्वपूर्ण रहते हैं । वृक्ष और वनस्पति भी मनुष्य की भांति पृथिवी के पुत्र हैं और यहां स्थिर भाव से खड़े हैं । यह पृथ्वी सम्पूर्ण औषधियों को उपजाने वाली माता हैं

विश्वस्वं मातरमोषधीनां ध्रुवां भूमिं पृथिवीं धर्मणाधृताम् ।

शिवां स्योनामनु चरेम विश्वहा ॥³⁷³

जो भूमि अशुद्ध हुई हो वहां पर शांति और हवन करने तथा गायत्री मन्त्र जपने का विधान है -
शान्ति होमाश्च कुर्वीत सावित्राणि च कारयेत्।³⁷⁴

४.२ यज्ञ एवं जल मंडल -

जल का महत्व अत्यधिक होने के कारण ही इसे जीवन कहा गया है, किन्तु यह अमृत, औषध तथा प्राण आदि तभी कहा जा सकता है, जब वह शुद्ध हो । अशुद्ध जल मारक भी बन जाता है । जल तत्व सृष्टि का जीवन है । यह अपनी अनेक स्थितियों, परिवर्तनों एवं रूपों से विश्व का पालन-पोषण कर रहा है। जल की अत्यधिक उपादेयता व गुणों के कारण ही वैदिक

³⁷¹ अथर्व.- १२.१.१८

³⁷² अथर्व - १२.१.७

³⁷³ अथर्व. - १२.१.१७ , ३.१२.१.५७

³⁷⁴ महा.अनु. - १०७/२७

निघण्टुकोश में जल के १०१ नामों का उल्लेख किया है - अर्णः, क्षोदः, नभः, अम्भः, सलिलम्, वाः, वनम्, घृतम्, मधु.....स्वधा वारि जलम् जलाषम् इति एकशतमुदकनामानि ।³⁷⁵

अथर्ववेद के 'आपो देवता' सूक्त में जल के अनेक नामों में एक नाम नदी भी कहा गया है

यददः संप्रयतीरहावनदता हुते ।

तस्मादा नद्यो नाम स्थ ता वो नामानि सिन्धवः ॥³⁷⁶

जब मेघ आपस में टकराकर गरजकर बरसते हैं तब वह जल पृथ्वी पर एकत्र होकर नाद करता हुआ बहता है, अतः इसीका नाम नदी है।

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम् ।³⁷⁷

वेद में शुद्ध जल को अमृत एवं औषध रूप कहा है –

इदमापः प्रवहत यत्किञ्च दुरितम् मयि ।³⁷⁸

जल में स्नान एवं उनका पान शरीर के मलों को दूर करता है। शुद्ध जल ऊर्जा वृद्धि प्रदान करते हैं, स्वर को उत्तम बनाते हैं, संवर्धन-शक्ति बढ़ाते हैं। वेदों में जल को पवित्र करने वाला अग्रगण्य तथा यज्ञ एवं यजमान को आगे ले जाने वाला कहा गया है –

देवीरापोऽ अग्रेगुवोऽ अग्रेपुवोऽ ग्रऽ इममद्य यज्ञं ।

नयताग्रे यज्ञपति सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम् ॥³⁷⁹

³⁷⁵ निघण्टु - १.१२

³⁷⁶ अथर्व.-३, १३, १

³⁷⁷ ऋक्. - १.२३.१९

³⁷⁸ ऋक्. - १.२३.२२

³⁷⁹ यजु.सं.- १. १२

जिस प्रकार संतान का हित चाहने वाली माताएं संतान को अमृत रूप दूध पिलाती हैं, वैसे ही शुद्ध जल भी अपना कल्याणकारी अमृत रस प्रदान करते हैं -

यो वः शिवतमो रसस्तस्य भाजयतेह नः ।

उषतीरिव मातरः ॥³⁸⁰

जल अन्न वनस्पति आदि का स्वामी है और मनुष्यों को निवास देने वाला है, औषध रूप है, उसको हम पीते हैं।

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारियां शरधन्वविन्दत् ॥

ओजायमानं यो अर्हि जघान दातुं शयानं स जनास इन्द्रः ॥³⁸¹

इस मन्त्र में ईश्वर उपासना के कई कारण बताए गए हैं, उनमें से एक कारण यह भी है कि वह परमात्मा सूखे अकाल के समय बादलों से पानी की वर्षा करके हमारे क्लेशों का अंत करता है। इसी प्रकार से निम्न मन्त्र में यह भी कामना की गई है कि शुद्ध जल हमारा अभीष्ट सिद्ध करने वाला, सबका कल्याण करने वाला, तृषा शान्त करने, सभी रोग दूर करने के लिये बहता रहे तथा सुखरूपी वर्षा निरन्तर होती रहे -

शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये ।

शंयोरभिस्रवन्तु नः ॥³⁸²

यजुर्वेद में जल को रोग निवारक मित्ररूप की कामना की गई है - जल और औषधि उत्तम मित्र के समान सुखदायक हों ।

सुमित्रया न आप ओषधयः सन्तु ।³⁸³

380 ऋक्. - १०.९.२

381 अथर्व. - २०.३४. ११

382 यजु.सं. - ३६.१२

383 यजु. - २०.२९

दिव्य बादल गरज और बिजली के साथ हमारे लिये कल्याणप्रद वर्षा करे -

शन्नः कनिक्रद् देवः पर्जन्यो अभिवर्षतु ॥³⁸⁴

मैत्रायणी संहिता में कामना की गई है कि जो जल पृथ्वी को रस से सींचते हैं, वे हमारे लिये सुखकर हों -

या पृथिवी पयसोन्दन्ति शुलास्ता ना आपः शँ स्योना भवन्तु ॥³⁸⁵

जल और अग्नि के संबंधों का उल्लेख करते हुए कहा गया है -

अग्नि या गर्भ दध्निरे।³⁸⁶

अग्नि को जल अपने गर्भ में धारण किये हुए है। तथा कपिष्ठल संहिता में प्रार्थना की गई है कि - जल बलवान एवं पवित्र अग्नि का शरीर है, उसका उपयोग करें -

या वाजिन्नग्रे प्रिया तनुरप्सु पावका तामावह ।³⁸⁷

इस मन्त्र से वर्तमान युग में जल द्वारा विद्युत (बिजली) का निर्माण किया जाना वेदों में ऋषियों के चिन्तन को वैज्ञानिक सिद्ध करता है -

विद्युद्वाऽपां ज्योतिः ।³⁸⁸

यजुर्वेद वाङ्मय में जल में अमृत तथा भेषज गुण बताए गए हैं -

अप्स्वन्तरमृतस्यभेषजम् ।³⁸⁹

शतपथ ब्राह्मण में जल को औषधियों का रस कहा है।

384 यजु. - ३६.१०

385 मैत्रा. सं. - २.१३.७

386 मैत्रा. सं. - २.१३.१

387 कपि. सं. - ६.३

388 शत. ब्रा. - ७.५.२.४९

389 तैत्ति. सं. - १.७.७.१, मैत्रा. सं. - १.११.१

आपो ह वा औषधीनां रसः ।³⁹⁰

तथा जलों को सबका जनक कहा है –

आपो वै जनयोऽद्भ्योहीदं सर्वं जायते ।³⁹¹

तैत्तिरीय आरण्यक में उल्लेख है कि जल समस्त लोकों का आधार है –

इमे वै लोका अप्सु प्रतिष्ठितः ।³⁹²

तथा तैत्तिरीय ब्राह्मण में जल को प्राण भी कहा गया है –

प्राणा वा आपः।³⁹³

प्रकृति में जल प्राप्ति के अनेक स्रोत हैं, जिनमें वर्षा का प्रमुख स्थान है। वेदों में कई मन्त्रों में उल्लेख है कि पृथ्वी पर जल का आगमन मेघों द्वारा होता है, जो जलको धारण करते हैं समुद्र जल प्राप्ति का बहुत बड़ा स्रोत है। शतपथ ब्राह्मण में समुद्र को नदीपति कहा गया है।

अपां वाऽएष पतिर्यन्नदीपतिः ।³⁹⁴

तथा स्वच्छ जल से युक्त कुओं का भी उल्लेख है -

एता (कूप्या) वै तेजस्विनी रापः ।³⁹⁵

चेहरे की कान्ति और शरीर की कोमलता में भी जल सहायक होता है। भोजन पचाने में भी तरल पदार्थ जल्दी पच जाते हैं। फलों के रसों में भी पानी का अंश होता है। जल हमारे लिये माता के समान है जलों के भी कई प्रकार बताते हुए वेद में कहा है -

³⁹⁰ शत. ब्रा. ३.६.१.७

³⁹¹ शत. ब्रा. - ६.८२.३

³⁹² तै. आ. - १.२२.८

³⁹³ तै. ब्रा. - ३.२.७.२

³⁹⁴ शत. ब्रा. - ५.३.४.१०

³⁹⁵ तै. ब्रा. - १.४.१०

शं ते आपो हैमवतीः शमु ते सन्तु स्याः।

शं ते सनिष्यदा आपः शमु ते सन्तु वर्ष्याः।

शं त आपो ध्वन्याः अहं ते सन्त्वनूप्याः;

शं ते खनित्रिमा आपः शं याः कुम्भेभिराभृतोः ॥³⁹⁶

- हैमवती जल - हिमालय पर होने वाले बर्फ जल अथवा चट्टानों के मध्य कुण्डों में जो जल होता है वह हैमवती जल कहलाता है। हिमालय के झरनों का जल, खनिज द्रव्य और औषधियों के रस से युक्त होता है।
- उत्स्या आपः - स्रोतों के जल - स्रोतों का जल भूमि एवं पर्वतों को चीरकर झरनों के रूप में निकलता है। इन जलों में भी खनिज पदार्थ होते हैं, किन्हीं-किन्हीं झरनों के सरोवर रूप जलों में गंधक औषध का भरपूर मिश्रण होता है। गंधक से भरपूर सुपरिचित झरना देहरादून मसूरी के पहाड़ों में है जिसे 'सहस्र-धारा' नाम से भी जाना जाता है।
- सनिष्यदा आपः - सदा बहने वाला जल, नदी आदि जलाशयों में सदा बहने वाला जल अधिक दूषित नहीं हो पाता। इन जलों से ही समस्त खेती समृद्ध फलीभूत होती है।
- वर्ष्या आपः - वृष्टि से प्राप्त होनेवाला जल शुद्ध तथा औषधि, वनस्पति जीव-जन्तुओं को जीवन देने वाला होता है। इन जलों को प्राण कहा जाता है।

यदा प्राणो अभ्यवर्षीद् वर्षेण पृथिवीं महीम् ॥

पशवस्तत् प्र मोदन्ते महो वै नो भविष्यति ॥³⁹⁷

अर्थात्- जब वर्षा के द्वारा पृथ्वी पर प्राण रूप जल बरसता है, तब सभी प्राणी प्रसन्न होते हैं और हमारा कल्याण होगा, महात्म्य बढ़ेगा ऐसा अनुभव करते हैं।

³⁹⁶ अथर्व. - १९.२११.२

³⁹⁷ अथर्व. - ११.४.७

- **ध्वन्याः आपः** - अंतरिक्ष का जल वाष्प रूप में होता है, इसे मरुत गण संग्रह करते हैं। इन जलों में अभ्रक लोहा तत्व विद्यमान होता है, यह जल शरीर पिण्डों के लिये शक्ति लाभ पहुंचाते हैं। मरुस्थल भूमि के जल भी ध्वन्याः आपः कहे जाते हैं। मरुस्थलों के रेतीले भाग में भी लोहा अभ्रक आदि होता है।
- **अनूप्याः आपः** - गीले प्रदेश तराई क्षेत्रों को कहते हैं। इन प्रदेशों को अनूप भी कहते हैं, यहां होने वाला जल अनूप संज्ञक होता है। ये जल कभी-कभी कृमि आदि से दूषित भी हो जाते हैं।
- **खनित्रिमा आपः** - कुंआ, ट्यूबवेल आदि खोदकर जो जल प्राप्त किया जाता है उस जल को खनित्रिमा जल कहते हैं। खोदे हुए जल की विशेषता होती है कि जो जिस भूमि से निकलता है वह उसी गुण का होता है, इसीलिये कहीं का जल मीठा और कहीं का खारा होता है। 'कुम्भेभिः आभृताः आपः' घड़े, कलश आदि में रखा जल, जल रखने के पात्र घट आदि मिट्टी, सोना, चांदी, पीतल, तांबा लोहा आदि धातुओं के बनते हैं। इन धातुओं से बने पात्रों में रखा जल भी तत्-तत् गुणों से युक्त होता है। यजुर्वेद में उल्लेख है कि सुगंधादि पदार्थों से यज्ञ करके मधुर, पवित्र एवं गुणयुक्त जलों को उत्पन्न करें, जिससे उत्तम गुणों से युक्त औषधियां प्राप्त हों तथा प्रजा की यक्ष्मा आदि रोगों से रक्षा हो-

आपो देवीरूपसृज मधुमतीरयक्ष्माय प्रजाभ्यः ।

तासामास्थानादुज्जितामोषधयः सुपिप्पला ॥³⁹⁸

जल को यज्ञ द्वारा सुसंस्कृत एवं शुद्ध करके और अधिक हितकारी बनाया जा सकता है तथा -

निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु ।³⁹⁹

प्रार्थना द्वारा इच्छा और आवश्यकतानुसार वर्षा की कामना की जाती है, वह भी यज्ञ द्वारा पूर्ण होने का उल्लेख है -

³⁹⁸ यजु. सं. - ११.३८

³⁹⁹ यजु. सं. - २२.२२

वृष्टिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम् ॥⁴⁰⁰

सूर्य की किरणें एवं औषधियां भी जल को शुद्ध करती हैं। यजुर्वेद में सूर्य रश्मियों एवं कुशा घास को जल का शोधक कहा है –

सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।⁴⁰¹

यज्ञ द्वारा जल शोधन-इन विभिन्न प्रकार के जलों से जड़-चेतन पुष्ट व समृद्ध होते हैं। इनके दूषित होने पर इनके शोधन का कार्य यज्ञ द्वारा होता है। वे जल चाहे अंतरिक्ष के हों, वृष्टि के हों नदियों आदि के हों जल शोधन की यज्ञीय शक्ति को यजुर्वेद में वर्णित किया है –

अग्निश्च मऽआपश्च मे – यज्ञेन कल्पन्ताम् ।⁴⁰²

अर्थात् अग्नि एवं जलों को शुद्ध आरोग्यप्रद यज्ञ के द्वारा प्राप्त करें। 'यो होमेन सुगंधयुक्तद्रव्यं परमाणुयुक्तमुपरिगतो वायुर्भवति स वृष्टिर्जलम् शुद्धं कृत्वा, वृष्ट्याधिक्यमपि करोति'। अर्थात् जो यज्ञ के द्वारा सुगंध तथा द्रव्य परमाणु युक्त ऊपर जाता हुआ वायु होता है वह वृष्टि जल को शुद्ध करता है तथा अधिक वृष्टि भी कराता है। प्राचीन ऋषि-मुनि जल की पवित्रता एवं शुद्धता बनाए रखने के लिये विशेष सचेष्ट थे। तैत्तरीय आरण्यक में निर्देश है कि –

नाप्सु मूत्रपुरीषं कुर्यात् । न निष्ठीवेत् ।⁴⁰³

अर्थात् जल में न कभी मलमूत्रादि का त्याग करना चाहिये और न थूकना चाहिये। आजकल समस्त नदियों आदि में गांवों-शहरों का मल-जल, बढ़ते हुए छोटे-बड़े उद्योग-धन्धों से निकलने वाले अपशिष्ट, कचरा आदि बहा दिया जाता है। इन दूषित जल, कूओं, बावड़ियों, तालाबों, नदियों, समुद्रों आदि का जलीय अंश सब स्थानों से भाप बनकर उड़ जाता है और

⁴⁰⁰ यजु.सं - १८.९

⁴⁰¹ यजु. सं. - १.१२

⁴⁰² यजु. सं. - १८.१४

⁴⁰³ तै. आ. - १.२६

अंतरिक्ष में इकट्ठा होता जाता है। यही मलार्क रूपी जल वर्षा द्वारा प्राणियों को मिलता है। इस दूषित जल से कई तरह की बीमारियां फैलती जा रही हैं, साथ ही साथ इस दूषित जल से उत्पन्न होने वाले अन्न, फल-सब्जियां वनस्पतियां भी हानिकारक हो रहे हैं। बढ़ती हुई जन संख्या के प्रदूषण को रोकना असम्भव होता जा रहा है। वैदिक वाङ्मय में वृष्टि को जल शुद्धि का साधन मानते हैं, क्योंकि वर्षा से जल में गति आ जाती है और गति जलशुद्धि में सिद्ध हेतु है।

यज्ञ एकमात्र ऐसा साधन है, जो मूल केन्द्र वर्षा को शुद्ध करके सभी जल केन्द्रों का शुद्धिकारक सिद्ध होता है। जलीय वनस्पति से भी जल शुद्धि होती है। जल शुद्धि की रासायनिक विधियां हानिकारक सिद्ध हो चुकी हैं, क्योंकि क्लोरीन का सतत प्रयोग पाचन तन्त्र और संवेदनशील अंगों पर दुष्प्रभाव देता हुआ यमदूत रूपी कैंसर को निमन्त्रण देता है। परंपरागत विधियों के साथ-साथ ताम्बे, चांदी और सोना धातु का प्रयोग भी जल की जीवाणु मुक्तता में उपयोगी है। जल के अनेक नामों में एक नाम अमृत- अर्थात् मृत्यु से बचाने वाला है, वहीं उसका नाम विष भी है। तात्पर्य यह है कि शुद्ध जल जीवन का साधन बनता है। और अशुद्ध जल मृत्यु का एवं अशुद्ध पेय जल डायरिया, गैस्ट्रोएंटेटिस, कालरा, पीलिया और डिसेंट्री आदि का कारण भी है।

इस गंभीर समस्या के समाधान के लिये वेदों में यज्ञानुष्ठान करते। रोगों से मुक्ति के उपाय बताये हैं। यागाग्नि में पौष्टिक, सुगन्धित, रोगनाशक एवं स्वादिष्ट पदार्थों की आहुतियां दी जाने पर उनसे उत्पन्न वाष्प का सम्पर्क अंतरिक्ष स्थित मलार्क से होता है, जिससे मल के परमाणुओं का विनाश होकर पौष्टिक, रोगनाशक, स्वादिष्ट तत्वों की जल में प्रधानता हो सकती है इसके लिये विशाल स्तर पर बृहद यज्ञ होते रहने आवश्यक हैं। प्राचीन ऋषि-मुनियों ने प्रत्येक गृहस्थ के लिये प्रतिदिन यज्ञ करने का विधान किया है।

मनीषियों ने गंगा, यमुना, गोदावरी आदि नदियों की महिमा का गुणगान करते हुए उनके जल को शुद्ध-पवित्र करने के लिये जन-मानस को प्रेरित किया था। इन पवित्र नदियों, जलाशयों के पास से जब भी निकलें तब एक तांबे का सिक्का श्रद्धा से उसमें डालने का नियम बनाया था क्योंकि तांबा जल को शुद्ध करता है, ऐसा स्मृतियों में उल्लेख है। आज भी ताम्रपात्र

में जल रखने की विधि प्रचलित है। प्राचीन मनीषियों के चिन्तन का प्रकाश यज्ञ ही जल प्रदूषण से विश्व को बचा सकता है।

४.३ यज्ञ एवं वायुमण्डल –

वैदिक वाङ्मय में वायु तत्व का विशद विवेचन प्राप्त होता है तथा चारों वेदों के स्वाध्याय से भली प्रकार यह तथ्य प्रकट होता है कि प्राणी शुद्ध जल, वायु, अल्लादि को ग्रहण करे। इन तीनों में वायु का प्रमुख स्थान है, क्योंकि जल और अन्न के बिना तो प्राणी कुछ समय जीवित रह सकता है किन्तु वायु के बिना कुछ क्षणों तक भी जीवित नहीं रह सकता, अतः पर्यावरण में सर्वाधिक महत्त्व वायु मण्डल को ही दिया जाता आचार्य यास्क के अनुसार गतिशील होने के कारण और दूसरों को भी गति देने वाली होने के कारण वायु को वायु कहा जाता है

वायुर्वा तेर्वैस्यादृतिकर्मणः ।⁴⁰⁴

वायु का महाभूतों की उत्पत्ति के क्रम में दूसरा तत्व है। पृथ्वी, जल, अजित की अपेक्षा सूक्ष्म होने से यह सबसे शक्तिशाली है। वायु से सम्पूर्ण पर्यावरण में प्राण-प्रतिष्ठा होती है। अतः ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में लाक्षणिक रूप से इसे, पुरुष के प्राण से उत्पन्न माना गया है –

प्राणाद्वायुरजायत ।⁴⁰⁵

प्राचीन वैदिक साहित्य में वायु की अतिशय महनीयता को स्वीकार करते हुए उसे प्राण कहकर सम्बोधित किया गया है –

प्राणाहुर्मातरिश्चानं वातो है प्राण उच्यते ।

प्राणी है भूतं भव्यं च प्राणे सर्व प्रतिष्ठितम्॥

⁴⁰⁴ निरुक्त - १०.१

⁴⁰⁵ ऋक्. - १०.९०.१३

यह वायु प्राण ही है तथा मैत्रायणी संहिता में - *अयं वाव यः* (वायु) पवन एष प्राणः । अर्थात् वह वायु जो प्रवाहमान है, वही प्राण है, कहकर वायु के महत्व को दर्शाया है । ऋग्वेदीय ब्राह्मणकार ने ऐतरेय ब्राह्मण⁴⁰⁶ में वायु को प्राण रूप ही स्वीकार किया है तथा ताण्ड्य महाब्राह्मण⁴⁰⁷ व गोपथ ब्राह्मण⁴⁰⁸ में सामवेदीय और अथर्ववेदीय ब्राह्मणकार ऋषि भी इस मत से सहमत हैं। वैदिक वाङ्मय में वायु तत्व का विशद विवेचन प्राप्त होता है। अथर्व वेद में वायु को वात कहकर -

वातः प्राणः ।⁴⁰⁹

वात और प्राण का पर्याय माना गया है। वायु शब्द गत्यर्थक 'वा' अथवा गत्यर्थक 'वी' धातु (पाणिनी धातु पाठ अदादि गण) से निष्पन्न होता है। आचार्य स्थौलाष्टीवी के अनुसार 'इण् गतौ' से आयु बना है और आयु ही 'वायु' है - वायु में वकार निरर्थक है अर्थात् आगम है । आचार्य यास्क ने वायु के स्थान में आयु का प्रयोग भी किया है⁴¹⁰ अमर कोश में वायु के २० नाम परिगणित किये गए हैं -

श्वसनः, वायुः, मातरिश्वा, अनिलः, समीरः, मारुत, स्पर्शनः, सदागतिः, पृषदश्वः, गन्धवहः, आशुगः, मरुत्, जगत्प्राण, नभस्वद्, पवमानः, समीरणः, वातः, पवनः, प्रभन्जनः आदि के अतिरिक्त आंधी को प्रकम्पनः तथा वर्षायुक्त हवा को झझावात एवं प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान को शरीरस्थ वायु कहा गया है ।⁴¹¹

यजुर्वेद में वायु के प्राणरूप होने का उल्लेख है। कामना की गई है कि प्राण, वायु के साथ उत्तमता के साथ रहे तथा प्राण बल से युक्त हो -

⁴⁰⁶ ऐत. ब्रा. - २.३८

⁴⁰⁷ ताण्ड्य ब्रा. - ४.६८

⁴⁰⁸ गो. ब्रा. - २.१.२६

⁴⁰⁹ अथर्व. - १९.४४.७

⁴¹⁰ निरुक्त - १०.१

⁴¹¹ अमरकोश - १.१.६१-६३

सं ते प्राणौ वातेन गच्छताम् ॥⁴¹²

आचार्य यास्क के अनुसार वायु मृत्यु से रक्षा करती है, अतः मित्र है –

मित्र प्रभीतेख्यायते ।

यह सींचती हुई वृष्टि करती हुई चलती है, इसलिये मित्र है –

सम्मिनवानो द्रवतीति वा।

यह औषधि, वनस्पतियों को स्निग्ध करती है इसलिये मित्र है –

मेदयतेर्वा⁴¹³

सब भूत वायु में ही मिल जाते हैं तथा वायु से ही फिर निकलते हैं –

वायुं हि एव सर्वाणि, भूतान्यपियन्ति वायोः पुनर्विसृज्यन्ते।⁴¹⁴

वैदिक विज्ञान के अनुसार वायु अंतरिक्ष एवं सौर मंडल में ४९ प्रकार के वात या मरुदगण निर्मित होते हैं। पर्यावरण संतुलन के बिगड़ जाने पर इनमें मरुदगणों में विषमता रिक्तता और खालीपन आ जाता है। इस अव्यवस्था के फलस्वरूप कहा जाता है कि सात प्रकार के भयंकर वात उत्पन्न होते हैं, ये वात अत्यंत विनाशकारी सिद्ध होते हैं। यजुर्वेद में इनका क्रमशः परिगणना किया गया है।

उग्रश्च भीमश्च ध्वान्तश्च धुनिश्च सासह्वाश्चाभियुग्वा च विक्षिपः स्वाहा ।⁴¹⁵

ये सात भयंकर वात हैं - १. उग्र, २. भीम, ३. ध्वान्त, ४. धुनि, ५. सासह्वान् ६. अभियुग्वा और ७. विक्षिप । यजुर्वेद में ऋषि इन सात मरुदगणों को लेकर इनकी शक्ति को दैनिक कार्य यज्ञ में उपयोगिता बताता है। वायु में पृथ्वी, जल, अग्नि (तेज) के गुणों गन्ध रस रूप

⁴¹² यजु. सं. - ६.१०

⁴¹³ निरुक्त - १०.२

⁴¹⁴ शत. ब्रा. - ११.५.३.११

⁴¹⁵ यजु. - ३९.७

को भी आंशिक रूप से धारण किये हुए, मुख्य रूप से स्वतः के ऋण स्पर्श से जानी जाती है। अथर्ववेद में कहा है –

वरुणोऽपामधिपतिः स भावतु ।⁴¹⁶

वायु जल का अधिपति है, वह मेरी रक्षा करे। महर्षि याज्ञवल्क्य ने वायु को सिकुड़ने वाली और फैलने वाली कहा है –

प्राणो वे समञ्चनप्रसारणम् ।⁴¹⁷

वायु विज्ञानवेत्ताओं का भी कथन है - वायु उष्ण होकर फैलती है, फैलने से हल्की होकर ऊपर जाती है और शीतल होने से सिमटती है। सिमटने से भारी होकर नीचे आती है, यही वायु के चलने का नियम है। वायु के विविध कार्यों एवं गुणों के आधार पर उसे विविध नामों से जाना जाता है - अथर्ववेद के प्राण सूक्त में इसे सवाधार तथा व्यापक कहा गया है । ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में भी इसे रस संचारक वायु कहा गया है। ऋग्वेद के अनेक मन्त्रों में वर्षा कराने वाला वायु कहा गया है। अथर्ववेद में वर्षक तथा शोधक मातरिश्वा (वायु) का महत्त्व निरूपित है –

ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा विशः पवते मातरिश्वा॥⁴¹⁸

मातरिश्वा-पवनदेव जल के तन्तु को मापते हुए सब दिशाओं को पवित्र करते हैं। प्राचीन ऋषियों ने औषधियों की वाहक होने से उसे भेषज वायु का महत्त्व दिया है और कामना की है

तन्नो वातो मयोभुवातु भेषजम् ।⁴¹⁹

⁴¹⁶ अथर्व. - ५.१४.४

⁴¹⁷ शत. ब्रा. - ८.१.४.१०

⁴¹⁸ अथर्व. - १३.३.१९

⁴¹⁹ ऋक्. - १.८९.४

वायु हमें उस सुखप्रद औषध को प्राप्त कराए। संहिता तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में वायु को यज्ञ का प्राण तथा अंतरिक्षरस्थ बाधाओं को हटाने वाली तथा यज्ञ में दी गई हवियों को यत्र-तत्र फैलाने वाली कहा गया है –

ये देवा यज्ञह्नो यज्ञमुषोऽन्तरिक्षे अध्यासते। वायुर्मा तेभ्यो रक्षतु ।⁴²⁰

जो देव अन्तरिक्ष में यज्ञ के हन्ता हैं। जो यज्ञ के प्रभाव को रोकते हैं, जो चोर हैं, उनसे वायु मेरी रक्षा करे वायु को गंध वाहक कहा गया है-

प्राणेन सुरभि चासुरभि च विजानाति ।⁴²¹

वायु के द्वारा सुगन्धि और दुर्गन्धि दोनों जानी जाती है। - ऋग्वेद के वायु देवता वाले मन्त्र में ध्वनिवाहक वायु का महत्व प्रतिपदित है। वायु के वेग से शब्दोच्चारण को श्रवण कराने वाली वाणी सुनने वाले पुरुषार्थी विद्वान् को प्राप्त होती है। वेद के अनुसार वायु सर्वत्र फैली हुई है और उसे दो भागों में बांटा जा सकता है। पहली शुद्ध वायु जो श्वास लेने के योग्य है तथा दूसरी अशुद्ध वायु जो श्वास क्रिया के सर्वथा अनुपयुक्त है। वेद में कहा है -

द्वाविमौ वातौ वात आ सिंधोरा परावतः।

दक्षं ते अन्य आ वातु परान्यो वातु यद् रपः ॥⁴²²

आ वात वाहि भेषजं वि वात वाहि यद् रपः।

त्वं हि विश्वभेषज वेवानां दूत ईयसे ॥⁴²³

अर्थात् जो ये वास - प्रश्वास रूप वायु चलती हैं, एक बाहर से फेफड़ों के रक्त तक जाती है दूसरी फेफड़ों से बाहर वायुमण्डल तक पहुंचती है। इसमें पहली मनुष्य को बल प्राप्त कराती है, दूसरी रक्त में जो दोष है उसे दूर करती है। यह शुद्ध वायु औषध रूप होती हुई शरीर में जो दोष

⁴²⁰ काठक सं. - ५.६

⁴²¹ जैमि. ब्रा. - १.२६९

⁴²² ऋक्. - १०.१३७.२

⁴²³ अथर्व. - ४.१३.२

है, भल है उसे बाहर फेंकती है। हे वायु ! तुम रोगों की दवा हो. तुम देवों द्वारा प्रेषित गति पूर्वक विचरण करती हो। प्रत्यक्ष भूत दो हवाएं सागर पर्यंत और समुद्र से दूर तक बहती रहती हैं। इनमें से एक हमें बल प्रदान करती है और दूसरी प्रदूषण को बहा कर दूर फेंक देती शुद्ध वायु में आरोग्यता प्रदान कर हमारी आयु को बढ़ाती है तथा हृदय रोग को दूर करने में मुख्य औषध का काम करती है –

वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे। प्राण आयूंषि तारिषत् ॥⁴²⁴

वायु हमारा पालक-पोषक व कल्याणकारक है। इसे यह ऋचा व्यक्त कर रही है-

उत वात पितासि न उत भातोत नः सखा। स नो जीवातवे कृधि ॥⁴²⁵

भावार्थ है कि वायु हमारा पिता और भाई के समान पोषण करने वाला और हमारा मित्रवत कल्याणकारी है, वह हमें जीवित रखता है।

यवदो वात ते गृहेऽमृतस्य निधिर्हितः ॥ ततो नो देहि जीवसे ॥⁴²⁶

हे वायु! तेरे घर में अर्थात् तेरे अंदर अमृत का भंडार निहित है उसमें से कुछ अंश हमारे सुखी जीवन के लिए हमें भी प्रदान करता है। मनुष्य को वायु प्रवाह का ज्ञान प्राप्त कर तथा वायु को शुद्ध करने की विधि जानकर जीवन को सुखी बनाना चाहिये। निम्न ऋचा में कहा है –

मरुतां मन्वे अधि मे ब्रुवन्तु प्रेमं वाजं वाजसाने अवन्तु ।

आशूनिव सुयमानव ऊतये ते नो मुञ्चन्त्वंहसः॥⁴²⁷

दोषनाशक वायु को मैं नमन करता हूं। वह मेरे लिये अनुग्रह से बोले और इस बल को, अन्न को सुख के निमित्त अच्छी प्रकार तृप्त करे। शीघ्रगामी घोड़ों के समान उन सुन्दर नियम

⁴²⁴ ऋक्. - १०.१८६.१

⁴²⁵ ऋक्. - १०.१८६.२

⁴²⁶ ऋक्. - १०.१८६.३

⁴²⁷ अथर्व. - ४.२७.१

वालों को अपनी रक्षा के लिये मैंने पुकारा है, वे हमें संकट से छुड़ावे। वायु हमें अन्न और जल भी प्राप्त कराता है -

अपः समुद्राद दिवमुद वहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति ।

ये अज्जिरीशानामश्चरन्ति ते नो मुञ्चन्त्वंहसः ।⁴²⁸

भावार्थ है कि ये वायुगण जल को पार्थिव समुद्र से आकाश में उठा कर पहुंचाते हैं और आकाश से पृथ्वी पर छोड़ देते हैं एवं ये समर्थ वायुगण जल के साथ चलते रहते हैं। वे हमें कष्ट से छुड़ावें। वायु प्रदूषण, जल तथा भूमि प्रदूषण से भी अधिक हानिकारक है, क्योंकि यह सीमित स्थान में नहीं होता और दूषित वायु में श्वास रोक कर कोई भी प्राणी जी नहीं सकता। प्रकृति चराचर जगत सभी दूषित हो जाता है, अतः वायु प्रदूषण को दूर करना परम आवश्यक है। जो वायु शरीर, रक्त, नस-नाडी को शुद्ध पवित्र करती है उसका शोधन यज्ञ करता है। शतपथ ब्राह्मण में कहा है -

अन्तेर्व धूमो जायते धूमावभ्रमभ्राद् वृष्टिरन्तोर्वा एता

जायन्ते तस्मादाह तपोजा इति ॥⁴²⁹

अर्थात् जो यज्ञ में हुव्य डाले जाते हैं उनसे धुंआ और वाष्प उत्पन्न होते हैं। फिर उस वाष्प से अभ्र बनते हैं, उनसे वृष्टि, वृष्टि से औषधि, औषधियों से अन्न, अन्न से धातु, धातुओं से शरीर और शरीर से कर्म बनता है। अग्निहोत्र वायु को हल्का बनाता है, जो आकाश में विद्यमान वायुमण्डल को शुद्ध करता है। वेदों में यज्ञ से वायु की शुद्धि एवं पुष्टि के उपायों का उल्लेख है -

मित्राय हव्यं घृतवज्जुहोता ॥⁴³⁰

पवित्र मित्र वायु के लिये घृत मिश्रित हुवि से यज्ञ करें।

⁴²⁸ अथर्व. - ४.२७.४

⁴²⁹ शत. ब्रा. - ७.३.१७

⁴³⁰ ऋक्. - ३.५९.१, ५, ७

तस्मै वाताय हविषा विधेम ।⁴³¹

उस वायु की अनुकूलता के लिये हम, हवि आदि से यज्ञ करें।

सं ते वायुर्मातरिश्वा दधातु ॥⁴³²

यज्ञ से शुद्ध हुआ आकाशगामी वायु अच्छी तरह पुष्ट करे।

अन्तिमूर्धा दिवः कुकुत्पतिः पृथिव्याज्यम् ।

अपां सि रेतांसि जिन्वति ॥⁴³³

यह महान् यज्ञाग्नि पृथ्वी में व्याप्त होकर इसका पोषक और संचालक बन जाता है, अंतरिक्ष लोक में यह पर्जन्य से एकीभूत होकर वृष्टि (जल) का रूप धारण कर लेता है और यही यज्ञाग्नि द्युलोक में व्याप्त और सामंज्यसित होकर सूर्य रूप को प्राप्त होती है। अतः यज्ञ के द्वारा मनुष्य प्रत्येक लोक की उच्चतम स्थिति को प्राप्त कर सकता है। आज के विज्ञान में वायु को शुद्ध करने की कोई विधि नहीं है, किन्तु वेद में वायु की शुद्धि के लिये यज्ञ की विधि है। डॉ. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार अपने श्रेष्ठ ग्रन्थ 'संस्कार-चंद्रिका' में अग्निहोत्र को तर्क द्वारा तथा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से विचार कर यह सिद्ध किया है। वेद मन्त्रों में स्पष्ट रूप से कहा गया है –

अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन ।

अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजसो घर्मो हविरस्मि नाम ।⁴³⁴

अग्नि यज्ञ में होम किये हुए पदार्थों को सूक्ष्म कर वायु में फैला कर, दुर्गन्ध का निवारण, सुगन्ध की प्रकटता और रोगों को नष्ट करके सब प्राणियों को सुखी करता है, वैसे ही सब प्राणियों को होना योग्य है।

⁴³¹ ऋक्. - १०.१६८.४

⁴³² यजु. - ११.३९

⁴³³ यजु. प्र. खण्ड - अ. ३. १२

⁴³⁴ यजु. सं. - १८.६६

वसोः पवित्रमसि चौरसि पृथिव्यसि मातरश्चिनोघऽसि विश्वधाऽअसि परमेण धाम्ना ह्रस्व मा
ह्रवामा ते यापति वार्षीत ॥⁴³⁵

इस मन्त्र में यज्ञ के लिये उपदेश दिया है कि हे विद्यायुक्त मनुष्य! जो या शुद्धि का हेतु है, जो विज्ञान के प्रकाश का हेतु और सूर्य की किरणों में स्थित होने वाला है, जो वायु के साथ देशदेशान्तरों में फैलनेवाला है, जो वायु को शुद्ध करनेवाला है, जो संसार को धारण करनेवाला है तथा जो उत्तम स्थान से सुख को बढ़ानेवाला है, ऐसे इस यज्ञ का त्याग मत कर तथा यज्ञ की रक्षा करने वाला यजमान भी उनको न त्यागे। इस मन्त्र में स्पष्ट रूप से बताया गया है कि यज्ञ, वायु की शुद्धि का हेतु है। यज्ञ के द्वारा जो सुगन्ध उत्पन्न होती है, वह वायु को शुद्ध करती है तथा साथ ही देश- देशान्तरों में फैलकर प्राणियों को सुगन्ध देती है और उन्हें धारण करने में अधिक समर्थ होती है।

पं. वीरसेन वेदश्रमी वेद विज्ञानाचार्य के अनुसार यज्ञ के द्वारा सूनामी लहरों से समाज की रक्षा की जा सकती है क्योंकि वेद ने समुद्रों से उत्पन्न वायुओं के लिये यज्ञ में आहुतियों का विधान करके यह बताया है कि वायुमंडल में विरलीकरण या घनत्व उत्पन्न करके उनके प्रचण्ड आक्रमण का शमन किया जा सकता है। वेद में स्पष्ट कहा है –

समुद्राय त्वा वाताय स्वाहा, सरिराय त्वा वाताय स्वाहा-

अनाधृष्याय त्वा वातायस्वाहाअप्रतिवृष्याय त्वा वाताय स्वाहा-

अवस्यवे त्वा वाताय स्वाहा- आशिमिदाय त्वा वाताय स्वाहा ।⁴³⁶

अर्थात् समुद्री वात के लिये आहुति प्रदान करो, जलभरी हुई गतिमान वायु के लिये के लिये आहुति प्रदान करो, अत्यन्त बलवान रौद्र वायु के लिये आहुति प्रदान करो-जो वायु रोकने

⁴³⁵ यजु.सं. - १.२

⁴³⁶ यजु.सं.- ३८.७

में असमर्थ प्रतीत होती है ऐसी आंधी- तूफानों वाली वायु के लिये आहुति प्रदान करो। रक्षणकर्ता वायु के लिये आहुति प्रदान करो और क्लेश निवारक वायु के लिये आहुति प्रदान करो।

४.४ यज्ञ एवं अग्नि –

यज्ञ की पूर्णता जहां हवि, घृत, समिधा, मन्त्र आदि से होती है, वहीं अग्नि, यज्ञ की प्रक्रिया को प्रारंभ व आगे बढ़ाने वाला है, इसीलिये अग्नि को ‘अग्रणी’ कहा जाता है।

निरुक्त में अग्नि की परिभाषा इस प्रकार की है - अग्नि का निर्वचन करते हुए महर्षि यास्क ने कहा है –

अग्निः कस्मात् ? अग्रणीर्भवति।⁴³⁷

अर्थात् - अग्नि किसे कहते हैं ? अग्नि अग्रणी होता है आगे ले चलने वाला होता है, आगे बढ़ाने वाला होता है। अग्नि के द्वारा ही जब समस्त प्रक्रिया मिलती है, तब उसकी संज्ञा यज्ञ अग्निहोत्र बनती है।

वैदिक वाङ्मय तथा संस्कृत, अमरकोशों आदि में अग्नि के अनेक नामों का उल्लेख है - वन्ही, वैश्वानर, जातवेदा, द्रविणोदः, हुताशन, ओज, अग्निहोत्र, नाराशंस, विद्युत, सविता, दहनः, नाचिकेत, अनलः, हुतभुक्, हविर्भुक् आदि। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि प्रजापति ने तप करके अग्नि को मुख से उत्पन्न किया, इसलिये ‘अग्नि’ अल्लाद है। जो इस ‘अल्लाद अग्नि’ को जानता है, वह स्वयं भी अल्लाद हो जाता है। उपनिषदों में उल्लेख है कि ‘अग्नि’ देवों में सबसे पहले उत्पन्न हुआ, अतः इसे अग्नि कहा जाता है। यही इसकी अग्निता है अर्थात् आगे चलना है –

तळा एनमेतवये देवानमाजनयत तस्मादतिः।

⁴³⁷ निरुक्त - ७.४.१४)

स जातः पूर्व प्रयाय यो वै पूर्व एत्यग्रऽएतीति वै तमाहुः सोऽएवास्यास्तिता ।⁴³⁸

स यवस्य सर्वस्याग्रमसृज्यत तस्मादन्तिः ।⁴³⁹

आचार्य यास्क भी इस बात की पुष्टि करते हैं। अग्नि को विज्ञान के आविष्कारों में सबसे बड़ा और आदि मानव का प्रथम आविष्कार माना जाता है।

ऋत् के धरातल पर सर्वप्रथम अग्नि का जन्म होता है, इसलिये वेदों में अग्नि को अपां गर्भः जल का पुत्र - कहा गया है। इसका अर्थ यही है कि स्थिति के धरातल पर अग्नि का जन्म ही सृष्टि का कारण है।

अने हंसि न्यत्रिणं दीद्यन्मत्र्येष्व। स्वे क्षये शुचिब्रत ॥⁴⁴⁰

शुद्धिकर्म करने वाला यह अग्नि अपने स्थान यज्ञ वेदी में मनुष्यों में प्रकाशमान प्राणियों के शरीर को खाने वाले रोगाणुओं को मारता है।

अग्नी रक्षांसि सेधति शुक्रशोचिरमर्त्यः । शुचिपावकः ईड्यः ॥⁴⁴¹

इन मन्त्रों में अग्नि को पर्यावरण शुद्धि का महत्वपूर्ण साधन बताया गया है। वेदों में अग्नि का बहुत वर्णन है। यह अग्नि समस्त प्रकार के दोषों को, अशुद्धियों को नष्ट करता है। अग्नि के वन्य, सामुद्रीय, यज्ञीय, गार्हस्थ्य तथा जाठर आदि कई भेद हैं, वे सभी अम्तियां तत्-तत् पदार्थों के दोषों की नाशक है।

सायंसायं गृहपतिर्ने अन्तिः प्रातःप्रातः सौमनसस्य दाता।

वसोवसोवं सुदान एधि त्वेन्धानास्त्वं पुषेम ॥⁴⁴²

⁴³⁸ शत. ब्रा. - २.२.४.२

⁴³⁹ शत. ब्रा. - ६.१.१.११

⁴⁴⁰ ऋक्. - १०.११८.१

⁴⁴¹ अथर्व. - ८.३.२६

⁴⁴² अथर्व. - १९.७७.३

यज्ञ सायं-प्रातः किया जाने वाला कर्म है। प्रातः काल में किया हुआ या सायंकाल तक के वायुमंडल को शुद्ध करता है, प्रत्येक प्रकार के आरोग्य, आनन्द और ऐश्वर्य को देने वाला है। हम सब तुझे प्रज्वलित करते हुए शरीर को पुष्ट करते हैं।

प्रातः प्रातःगृहपतिर्ने अन्तिः सायं सायं सौमनसस्य दाता ।

वसोवेवसोर्व सुदान एन्धीन्धानास्त्वा शतं हिमाऋधेम् ॥⁴⁴³

सायंकाल का यज्ञ प्रातःकाल तक वायुमंडल को दोषरहित बनाता है। सभी आरोग्य, आनन्द और ऐश्वर्य को देने वाला है। हे यज्ञाग्नि! हम सौ वर्षों तक तुझे प्रज्वलित करते हुए समृद्ध होते रहें। अग्नि के द्वारा सब पार्थिव लोक लोकान्तरों तक यज्ञ से सुगन्धित वायु तथा वाष्प फैलाई जाती है। अग्नि का एक नाम 'वन्हि' है क्योंकि वह आहूत पदार्थों को सूक्ष्म रूप देकर उन्हें हल्का कर उठा ले जाती है तथा दूर प्रदेशों तक पहुंचा देती है। घर में रखे पदार्थों से, धूप, दीप, अगरबत्ती आदि से वैसा लाभ नहीं होता, जैसा कि यज्ञ करने से होता है क्योंकि अग्नि जलने से वायु का प्रवाह बढ़ जाता है। जिस स्थान पर यज्ञ किया जाता है, वहां की वायु को बाहर निकाल देता है तथा बाहर की वायु वेगपूर्वक अन्दर आ जाती है। यज्ञाग्नि वर्षा कराने में भी सहयोगी है जैसा कि शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है-

अन्तेर्व धूमो जायते धूमावभ्रमभ्राद् वृष्टिरस्तेर्वा

एता जायन्ते तस्मादाहतपोजा इति ।⁴⁴⁴

स्वामी दयानन्द सरस्वती इसके भावार्थ में लिखते हैं कि -जो होम करने के द्रव्य अग्नि में डाले जाते हैं, उनसे धुंआ और भाप उत्पन्न होते हैं क्योंकि अग्नि का यही स्वभाव है कि पदार्थों में प्रवेश करके उनको भिन्न-भिन्न कर देता है, फिर वे हल्के होके वायु के साथ ऊपर आकाश में चढ़

⁴⁴³ अथर्व.-१९.७७.४

⁴⁴⁴ शत.ब्रा.- ५.३.७.१७

जाते हैं। उनमें जितना जल का अंश है वह भाप कहाता है और जो शुष्क है, वह पृथ्वी का भाग है -इन दोनों के योग का नाम धूम है। वे परमाणु मेघमण्डल में वायु के आधार से रहते हैं, फिर वे परस्पर मिलके बादल होके उनसे वृष्टि, वृष्टि से औषधि, औषधि से अल्ल, अन्न से धातु. धातुओं से शरीर और शरीर से कर्म बनता है। महर्षि मनु ने भी मनुस्मृति में लिखा है कि अग्नि में डाली हुई आहुति सूर्य किरणों में जा उपस्थित होती है, इससे वर्षा होती है, वर्षा से अन्न और अन्न से प्रजा होती है -

अग्नौ प्रस्ताहुति सम्यगादित्यमुपतिष्ठते ॥

आदित्याज्जायते वृष्टिः वृष्टेन्नं ततः प्रजा ॥⁴⁴⁵

यज्ञ करने की प्रेरणा देते हुए अनेक मन्त्र हैं -

अरं कृण्वन्तु वेदिं समस्तिमिन्धतां पुरः ॥⁴⁴⁶

यज्ञवेदि अलंकृत करो, अग्नि प्रज्वलित करो ।

अग्निमिन्धीत मर्त्यः ॥⁴⁴⁷

अर्थात् - मनुष्य अग्नि को प्रज्वलित करे ।

आ जुहोता हविषा मर्जयत्वम् ॥⁴⁴⁸

यज्ञाग्नि में शोधक द्रव्यों की आहुति देकर प्राकृत पदार्थों को शुद्ध करो ।

अग्निहोत्र को दैवीय नौका कहा जाता है -

सुत्रामाणं पृथिवीं चामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम् ।

⁴⁴⁵ मनु. - २.७६

⁴⁴⁶ ऋक्. - १.१७०.४

⁴⁴⁷ साम. - ८२

⁴⁴⁸ साम. - ६३

वैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रहेमा स्वस्तये ॥⁴⁴⁹

अर्थात् - यज्ञ ऐसी विशाल दिव्य, तेजोमयी, छिद्ररहित, कल्याणकारिणी, अखंडित, निश्चय रूप से आगे ले जाने वाली, विधि-विधानों से युक्त, विद्युत संबन्धी चप्पू वाली, निर्दोष, नछिद्रनौका पर जो सदा यजमान की रक्षा करती है, अपने कल्याण के लिये हम चढे ।

अग्नि सत्कार के लिये वेद में कहा है -

समिधाग्नि दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम् ।

आस्मिन् हव्या जुहोतन ।⁴⁵⁰

समिधा से अग्नि का सत्कार करना चाहिये एवं घृत की आहुतियों से उसअग्नि अतिथि को प्रबुद्ध, प्रज्वलित करना चाहिये । वेद में अग्नि को अनेक स्थलों में - पावक अभीवचातन = पवित्र करने वाला, पावक शोचिः - रोग दूर करने वाला - आदि विशेषणों से संबोधित किया गया है। ये संबोधन इंगित करते हैं कि अग्नि शोधन कार्य में महत्वपूर्ण है। अग्नि में वायुशोधक अथवा रोगकृमिनाशक पदार्थों का होम किया जाता है जिससे पर्यावरण विशुद्ध होकर प्राणधारक, जीवनदायी बनता है।

जिस अग्नि में आहुतियां दी जाती हैं, वह अग्नि ज्वालाओं से युक्त होनी चाहिये। मुण्डकोपनिषद् में कहा है -

यदा लेलायते ह्यर्चिः समिद्धे हव्यवाहने ।

तदाज्यमागावन्तरेण आहुतिं प्रतिपादयेत् ॥⁴⁵¹

अर्थात् अग्नि जब पूर्णतः रक्त अर्चियों वाली होवे उसमें से ज्वालाएं निकल रही हों तब उसके मध्य आहुतियां प्रदान करनी चाहिये । अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये गाय के घी की

⁴⁴⁹ ऋक्. - १०.६३.१०

⁴⁵⁰ यजु. - ३.१

⁴⁵¹ मुण्ड.उप.- १.२.२

बत्ती अथवा गुग्गुलु व कपूर उपयुक्त हैं। सूर्योदय सूर्यास्त के १०-१५ मिनिट पूर्व गर्मी या सर्दी के दिनों में तथा १५-२० मिनिट पूर्व बरसात के समय अग्नि प्रज्वलित करना चाहिये। अग्नि में आम, पीपल, बड़, गूलर, कैर आदि वृक्षों के अंगुली बराबर लम्बाई -चौड़ाई के काष्ठ टुकड़ों की समिधाएं प्रदान की जाती हैं। ये समिधाएं अग्नि-प्रधान होती हैं, अग्नि प्रज्वलित करने में सहायक रहती हैं। ये सभी समिधाएं औषधीय गुणों से भी भरपूर होती हैं। यदि ये वृक्ष समिधा के लिये उपलब्ध न हों तो जिन वृक्षों में कांटे व कड़वे फल न लगते हों उनसे अग्नि को प्रज्वलित किया जा सकता है। अग्नि के माध्यम से अर्थात् यज्ञ में आहुत करने से घी सामग्री समिधा तथा अनेक शोधक पदार्थ धूम्र के रूप में वायु में मिलकर जल, भूमि, वृक्ष, अल्लादि, वनस्पति आदि सभी चराचर जगत् में प्रविष्ट होकर स्वास्थ्य प्रदान करते हैं। वायुमंडल में आर्द्रता एवं भार की वृद्धि होती है। वातावरण में परिवर्तन होने से, समय पर वर्षा होने से वनों का पालन और अन्न की वृद्धि होती है। सूखा-बाढ़, आंधी-तूफान आदि उपद्रव को शान्त करने का कार्य यज्ञ से सरलता से संभव है। यान्त्रिक साधनों से होने वाले प्रदूषण का निवारण यज्ञ की अग्नि में प्रदूषण निवारक पदार्थों का प्रयोग करने से होता है। यज्ञ की अग्नि में रोग-विनाशक औषधियों के प्रयोग से रोग प्रदूषक तत्वों का निवारण होकर सार्वजनिक स्वास्थ्य की उन्नति होती है। सुगंधित औषधीय द्रव्यों के अग्नि में प्रयोग से वायुमंडल सुगंधित होकर दुर्गंध का नाश होने से शुद्ध श्वास ग्रहण करने से स्वास्थ्य में वृद्धि और मानसिक शान्ति मिलती है।

पौष्टिक पदार्थों को अग्नि में जलाने से वातावरण में अनेक पुष्टिकारक गैस का मिश्रण होने से जलवायु में आर्द्रता-धारक शक्ति बढ़ती है। मिष्ट पदार्थों को अग्नि में जलाने से अनेक रोगों के किटाणुओं का नाश होता है। इस प्रकार यज्ञाग्नि के धूम्र से वृक्षों का भी पर्यावरण शोधक शक्ति बढ़ती है और आक्सीजन अधिक उत्पन्न होने से सभी तरह के प्रदूषण नष्ट होते हैं।

यज्ञ की भस्म उत्तम कीटाणुनाशक खाद, तथा त्वचा आदि रोगों के लिये प्रयोग में ली जाती है। बहुशः मन्त्रों में सूर्य की गर्मी - ताप से भी प्रदूषण निवारण के गुणों का वर्णन है।

उत सूर्यो दिव एति पुरो रक्षांसि निजूर्वन ।

आदित्यः पर्वतोभ्यो विश्वदृष्टो अदृष्टहा ॥⁴⁵²

इस मन्त्र में यह स्पष्ट है कि सूर्य दृष्ट-अदृष्ट समस्त पर्यावरण रक्षक तत्वों के प्रदूषण को नष्ट करने की महौषध है।

सूर्ये विषमा सृजामि ।⁴⁵³

सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्यस्य रश्मिभिः ।⁴⁵⁴

सूर्य की बाल रश्मियां जीवों के समस्त रोगों को दूर करती हैं और प्रखर रश्मियां पृथ्वी, जल आदि के प्रदूषण को हटाती हैं। सूर्य की किरणें समुद्रादि से जल लेकर शुद्ध वाष्प में बदल कर मेघ में परिणित होकर पुनः वर्षा के रूप में धरती पर बरसा देती हैं। वैसे ही यज्ञाग्नि का धुंआ पर्यावरण में विद्यमान दूषित वायु को नष्ट कर, शुद्ध वायु उत्पन्न कर देता है, जो पर्यावरण के समस्त दोषों को दूर करने में सक्षम है। लगभग ५०० ग्राम समिधा, १०० ग्राम सामग्री, तथा ५० ग्राम गोघृत से १०-१५ मिनिट में की जाने वाली यज्ञ-क्रिया से पर्यावरण संरक्षण व शुद्धि का इतना आश्चर्यजनक कार्य होता है कि वह मीलों तक फैली दूषित, विषैली, कीटाणु युक्त वायु को अत्यन्त शीघ्र शुद्ध कर देती है। वेद कहता है कि यह यज्ञाग्नि उसी तरह दोषों को दूर करती है जैसे –

इदं हविर्यातुधानान् नदी फेनमिवा ।⁴⁵⁵

अर्थात् यज्ञ में डाली हुई आहुति विनाशकारी रोगों को व गैसों को ऐसे बहा कर ले जाती है, जैसे नदी झागरूप कूड़े-कचरे को बहा ले जाती है।

याज्ञिक यज्ञ द्वारा सुखों की प्राप्ति किस तरह करता है यह भाव निम्न मन्त्र में है-

⁴⁵² अथर्व. - ६.७२.१

⁴⁵³ ऋक्. - १.९११

⁴⁵⁴ यजु. - ४.४

⁴⁵⁵ अथर्व.- १.८.१

पूर्णा दर्वी परापत सुपूर्णा पुनरापत।वस्त्रेव विक्रीणावहा ईषमूर्ज शतक्रतो ॥⁴⁵⁶

भाव यह है कि हे यज्ञाग्नि ! मैं तुझे घृत- अन्नादि की आहुति दें और तू मुझे बदले में रस, बल, प्राण आदि प्रदान कर । जिस प्रकार व्यापारी रुपयों का आदान-प्रदान कर अल्लादि पदार्थों को खरीदते और बेचते हैं, वैसे ही हम याज्ञिक भी शुद्ध द्रव्यों को अग्नि में देकर अनेक प्रकार के सुखों को खरीदते हैं।

अस्मि तं पुरोदधे हव्यवाहमुप बुवे। देवांऽआ सादयादिह ॥⁴⁵⁷

वेद में अग्नि को दूत कहा है । याज्ञिक कहता है मैं अग्नि को दूत के रूप में प्रस्तुत करता हूँ । यह यज्ञ प्रक्रिया है। अग्नि के द्वारा सारे पार्थिव लोक- लोकान्तरों तक सुगन्धित वाष्प फैलाई जाती है । यह दूत कार्य वह अति तीव्र गति से करती है । यजुर्वेद के एक अन्य मन्त्र में कहा गया है -

स बुद्रवत् स्वाहुतः स दुळवत स्वाहुतः।⁴⁵⁸

उसके फैलने का रूप तरंगों से होता है जैसा समुद्र की लहरें।

वह्निरसि हव्यवाहनः ।⁴⁵⁹

इसमें तापमान-परिवर्तन करने में यज्ञजन्य वायु सहायक होती है।

स्वाहा कृते ऊर्ध्ववभसं मारुतं गच्छतम् ।⁴⁶⁰

यज्ञ में स्वाहापूर्वक कही आहुति देने से वायु ऊपर आकाश में जाए। यह गति याकुण्ड से सीधी लम्ब रूप में द्युलोक तक एक स्तम्भ सा खड़ा कर देती है और गति २० कि.मी. प्रति घण्टा तक जा सकती है । तापक्रम का परिवर्तन वायु में हलचल पैदा कर देता है । चलती वायु पर्जन्य

⁴⁵⁶ यजु. - ३.४९

⁴⁵⁷ यजु.- २२.१७

⁴⁵⁸ यजु. - १५.३४

⁴⁵⁹ यजु.- ७.३१

⁴⁶⁰ यजु.- ५.३१

में हलचल पैदा करके उसे बरसने पर विवश करती है। अग्निदेवता वाले मन्त्र में यज्ञाग्नि का महत्व प्रतिपादित है – यथा

यं देवासो ऽजनयन्तास्ति यस्मिन्नाजुहुवुर्भुवनानि विश्वा ।

सो अर्चिषा पृथिवी द्यामुतेमामृजूयमानो उतपन्महित्वा ॥⁴⁶¹

वेद विज्ञान के अन्वेषक विद्वान ने इस मन्त्र की व्याख्या में लिखा है - जिस यज्ञाग्नि को यज्ञ विज्ञान के ज्ञाता उत्पन्न करके विश्व कल्याण के लिये विविध भेषज तत्वों की उसमें आहुतियां देते हैं, उसकी ज्वाला, ताप तथा दीप्ति पृथ्वी तथा अन्तरिक्ष लोक को शुद्ध करती हुई अपने सामर्थ्य से स्वप्रभाव को तेजस्वी बनाए रखती है।

ऋग्वेद के अग्निदेवता मन्त्र में कहा गया है कि अग्नि के धूम से वायु आदि पदार्थ शुद्ध होते हैं-

त्वेषस्ते धूम ऋण्वति दिवि षष्ठुक्र आततः ।⁴⁶²

अग्नि का प्रदत्त एवं शुद्धि करनेवाला धूम, आकाश में व्याप्त होता हुआ चलता है। यज्ञ में अग्नि देव व्यापक हैं –

अन्ते यं यामध्वरं विश्वतः; परिभूरसि ।

स इदेवेषु गच्छति ॥⁴⁶³

अर्थात् हे अग्ने प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! यम्; जिन अध्वरम् हिंसारहित पवित्र यज्ञ एवं दानादि कर्मों में, आप विश्वतः व्याप्त होते हैं, उनकी परिभूरसि; आप सब प्रकार से रक्षा करते हैं, वही यज्ञ देवेषु; दिव्य धर्मों की ओर जाता है एवं जगत् को सुख प्राप्त कराता है ।

अस्तिस सर्वेषां पाप्मनामहन्ता ।⁴⁶⁴

⁴⁶¹ ऋक्. - १०.८८.९

⁴⁶² ऋक्. - ६.२.६

⁴⁶³ ऋक्. - १.१.१.४

अग्नि सब दोषों का विनाशक है ।

अजिना वा अयं लोको ज्योतिष्मान् ।⁴⁶⁵

यह लोक अग्नि से ज्योतिरूप चेतना युक्त है, कहकर स्तुति करते हैं ।

अग्निव प्रथमा विश्वज्योतिः ।⁴⁶⁶

अग्नि ही इस विश्व की पहली किरण है।

⁴⁶⁴ शत. ब्रा. - ७.३.२.१६

⁴⁶⁵ तैत्त. ब्रा. - ३.९.७.४

⁴⁶⁶ जैमि. ब्रा. - १.२.३२

पंचम अध्याय

यज्ञों एवं पर्यावरण विषयक भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के विचार

५.१ भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के विचार-

वैदिक ऋषियों का आचार-विचार प्राकृतिक स्वास्थ्य के प्रति सदा सचेष्ट था। भूतमात्र के कल्याण का चिन्तन वे निरन्तर करते थे तथा पञ्चतत्त्वों को ही देवता के रूप में पूजते थे। जीवन को सन्तुलित रखने में सभी पर्यावरणीय तत्वों की महती भूमिका होती है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की विश्व प्रसिद्ध संस्था यूनेस्को (UNESCO) वेदों तथा वैदिक परंपरा को सुरक्षित रखने में लगी है। इसके विपरीत यूरोप, अमेरिका आदि देशों में औद्योगिक उपलब्धियों के लिये आज वृक्षों और वनों को नष्ट किया जा रहा है और ये लगभग जंगलों से विहीन हो रहे हैं अतः ग्रीन हाउस गैस बढ़ती जा रही है। अथर्ववेद में कहा है – अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयम्⁴⁶⁷ हमें अंतरिक्ष से भय न हो, द्युलोक, आकाश, पृथ्वी हमारे लिये अभयकारक हो, सामने पीछे से हम अभय हों, दिन और रात में हमें भय न हो, समस्त दिशाएं हमारी मित्र हों। लेकिन आज मनुष्य ने पर्यावरण को प्रदूषित करके पृथ्वी के तापमान को बहुत गर्म करके सब दिशाओं को अपना शत्रु बना लिया है अतः विश्व के सभी देशों को विनाशकारी प्रदूषण से बचाने का शीघ्र यत्न करना होगा। आज इस समस्या का रूप इतना विकराल हो चुका है कि मानवता ही नहीं संपूर्ण जड़-चेतन प्रकृति के विनाश का संकट उभरकर सामने आ गया है।

पृथ्वी के बढ़ते तापमान के लिये ग्रीन हाउस गैसों में कार्बन डाइ ऑक्साईड प्रमुख है। उपभोक्ता संस्कृति के चलते बढ़ते प्रदूषण ने पेड़ों की कार्बन-डाइ-ऑक्साईड पचाने की क्षमता को कम कर दिया है। पेड़-पौधे अपनी निर्धारित क्षमता से कम मात्रा में वातावरण से जहरीली गैस सोख रहे हैं। पेड़ों की सहन-शक्ति घट रही है, जिससे भविष्य में पेड़ों के अस्तित्व के लिये खतरा है।

‘ग्रीन हाउस’ के प्रभाव के कारण पिछले सौ वर्षों में पृथ्वी का औसत तापमान १ सेंटीग्रेड बढ़ा है और लगातार बढ़ता ही जा रहा है। अगर इस तरह बढ़ता ही रहा तो समुद्र जल स्तर में

⁴⁶⁷ अथर्व. - १९.१५.५

१६० सेंटीग्रेड की बढ़ोतरी हो सकती है। इसके कारण कई द्वीप समुद्र में विलीन हो सकते हैं। सागर का जल स्तर बढ़ने से स्वाभाविक है कि पीने के पानी का अभाव हो जाएगा जिससे पृथ्वी का संतुलन बिगड़ जाएगा सारी दुनिया के औसत खाद्यान्न उत्पादन में कमी आएगी और पृथ्वी पर अनेक नई किस्म की बीमारियां जन्म लेंगी⁴⁶⁸ -

यू. एन. ओ. सन् ८० की रिपोर्ट बताती है कि ४४ लाख ७७ हजार हेक्टेयर उपजाऊ और सिंचित जमीन पर तम्बाकू की खेती होती है, इतनी जमीन यानी सिर्फ तम्बाकू वाली जमीन पर फलों के वृक्ष लगाए जाएं तो कितने फलों से मनुष्यों और अन्य प्राणियों को भी लाभ मिलेगा और वृक्षों के कारण पर्यावरण भी शुद्ध होगा, यदि फल नहीं लगाएं और तो पशुओं के लिये घास ही लगाई जाए तो इतने पशुओं का पालन हो सकता है कि एक महाद्वीप की दूध की जरूरत पूरी हो सकती है। तब से अब तक तम्बाकू का उत्पादन बढ़ा ही है और चाय व कॉफी के लिये इससे भी अधिक जमीन घेरी हुई है। इनकी खेती पृथ्वी तथा प्राणियों के जीवन को प्रदूषित करती है।⁴⁶⁹

CENTER OF SCIENCE AND ENVIRONMENT संस्था की संचालिका पर्यावरणविद् सुश्री सुनिता नारायण ने भारत में पर्यावरण प्रदूषण से निर्माण होने वाली समस्याओं के विषय में कहा कि शहरों की प्रगति एक तरह से विषैले स्वरूप की हो रही है। शहरों में बढ़ने वाले उद्योग, गांवों का शहरीकरण एवं प्राकृतिक संपदा का अनुचित व अत्यधिक दोहन से हवा, पानी और भूमि का प्रदूषण निरंतर बढ़ता ही जा रहा है। नदियां ड्रेनेज समाने वाली खाइयां बन गई हैं, खेतों में रासायनिक खाद और विषैले कीटनाशकों से मिट्टी, हवा, पानी और कहीं तो मां के दूध में भी हानिकारक डी. डी. टी. और आणविक विकिरण पाए गए हैं।⁴⁷⁰

अमेरिका में कैलिफोर्निया नगर के एक अनुसन्धान केन्द्र में यज्ञों के मन्त्रों के उच्चारण का विशेष अध्ययन किया गया है। एक भूगर्भ शास्त्री डॉ. जी. लेन ने बताया कि सामान्यतः जो हम बोलते हैं उसकी तरंगें एक सीधी रेखा में वायुमण्डल में जाती हैं। इसी कारण हम रेडियो तथा टी. वी. में उन्हें पकड़ कर सुन पाते हैं पर यज्ञ के मन्त्रों का विधिवत उच्चारण करने से ,ध्वनि

⁴⁶⁸ इस्पात भाषा भारती - श्री राजेश मोहन।

⁴⁶⁹ यू.एन.ओ.सन् ८० की रिपोर्ट।

⁴⁷⁰ डॉ.बी.पी.पाल- 'CENTER OF SCIENCE AND ENVIRONMENT',

तरंगों सीधी रेखा में न जाकर गोलाकार रूप में आकाश की तरफ जाती है। वाणी तरंगों के इस गोलाकार रूप में ऊपर उठने के कारण हवनकुण्ड से निकलने वाले छोटे-छोटे कार्बन के कण तथा गैसों भी इन तरंगों के साथ मिलकर गोलाकार रूप में ऊपर जाते हैं तथा वातावरण को पवित्र करते हैं।

५.२ वैज्ञानिकों द्वारा यज्ञ से सम्बन्धित अनेक खोजों से प्राप्त परिणामों का विश्लेषण-

जापानी वैज्ञानिकों का कहना है कि यज्ञ से उठने वाले सुगन्धित धुँए का असर सीधा दिमाग पर होता है, जिससे मनुष्य में कार्य कुशलता तथा कार्यक्षमता की वृद्धि होती है ॥

नेशनल बोटानिकल रिसर्च इन्स्टीट्यूट लखनऊ के डिविजन ऑफ प्लान्ट माइक्रोब इन्टेरेक्शन्स के चन्द्रशेखर नौटियाल, पुनीत सिंह चौहान तथा एशियन एग्री- हिस्ट्री फाउंडेशन सिकन्दराबाद के यशवन्त लक्ष्मण नेने, इन्होंने १९ जनवरी २००७ तथा पुनः १७ अगस्त २००७ में भी हवन के औषधीय धुँए पर शोध कर यह सिद्ध किया है कि medical smoke reduces air borne bacteria. तत्पश्चात् २२ अगस्त २००७ को यह मान लिया गया कि हवन का धुँआ वायु के प्रदूषण को दूर करता है, स्वास्थ्य व रोगों का उपचार करता है। इस प्रयोगशाला ने इस तथ्य की विस्तृत व्याख्या की है। यह औषधीय धुँआ ९४ % बैक्टीरिया कम करता है। और हवा को बैक्टीरिया रहित बनाता है। |

एक बन्द कमरे में एक घन्टे तक किया गया हवन का धुँआ २४ घन्टे तक उस कमरे को शुद्ध रखता है। खुले कमरे में भी किया गया हवन का धुँआ प्रदूषण को दूर करता है और सभी तरह के पेड़ पौधों तथा प्राणीमात्र को बाधित करने वाले बैक्टीरिया को उसके आस-पास कीटाणुओं को नष्ट करता है। शरीर के रक्त को दूषित करने वाले तथा पौधों को हानि पहुंचाने वाले कीटाणुओं को पूरी तरह नष्ट कर देता है। उक्त संस्था ने हवन के धुँए के प्रभाव पर खोज का विस्तृत विवेचन किया है।⁴⁷¹

डॉ. रजनी आर जोशी ने अपनी पुस्तक 'The Integrated science Of Yagna' में लिखा है कि यज्ञ के मन्त्रों का सही उच्चारण (गति ,लय और उतार-चढ़ाव)से जो ध्वनि-ऊर्जा

⁴⁷¹ सुनिता नारायण- प्रदूषण की मार से कमजोर होते पेड़ों के फेफड़े –रवीन्द्र गिन्नोरे

(Sound Energy) उत्पन्न होती है वह कानों को तो प्रिय लगती ही है पर साथ ही वह वायुमण्डल में व्याप्त जीवन-निर्वाह ऊर्जा (Life sustaining energy) से मिलकर उसको बलवती बना देती है जो लाभप्रद होती है।⁴⁷²

द्वितीय विश्व युद्ध के बाद औद्योगिकीकरण का फैलाव पूरे विश्व में हुआ और इसके साथ ही औद्योगिक प्रदूषण का प्रभाव भी प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से सभी पर पड़ने लगा। विश्व स्वास्थ्य संगठन की सर्वेक्षण (२००३-२००४) रिपोर्ट के अनुसार कार्य स्थल पर व्यावसायिक खतरों के बढ़ते रहने से हमारे देश में लगभग १८० लाख लोग प्रभावित हैं तथा इसका विश्वव्यापी असर भी चौंकाने वाला है।⁴⁷³

भूगोलवेत्ता 'राबर्ट कोच' का कहना है कि एक दिन ऐसा आएगा जब मनुष्य को स्वास्थ्य के सबसे बड़े शत्रु के रूप में निर्दयी प्रदूषण से संघर्ष करना पड़ेगा। अब यह समय आ चुका है, क्योंकि प्रकृति का ताण्डव इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है। रियो डि जेनेरो में हुए ऐतिहासिक पृथ्वी सम्मेलन में भी पर्यावरण संरक्षण की आवश्यकता मुख्यतः सामने आई थी क्योंकि सम्पूर्ण विश्व खतरे में है।

मनुष्य निरंतर प्रदूषण के शिकंजे में फंसता जा रहा है, फलस्वरूप विचारों का प्रदूषण जो सर्वाधिक हानिकारक है, चारों तरफ फैला हुआ है। 'CLUB OF ROME' एक वैज्ञानिक संघटन है, वहां १९७० से ८० के दशक में एक उपक्रम किया गया उस समय की प्रदूषण सहित सभी समस्याएं कम्प्यूटर में भर दी गईं और उसका उपाय पूछा गया। कम्प्यूटर का उत्तर था - 'go back to nature' जीवन पद्धति बदलना चाहिए। कितना सटीक उत्तर है - आज की जीवनशैली जिसे आधुनिक सभ्यता कहा जाता है, वह थोड़ी सुविधाओं के साथ अधिक समस्याएं बढ़ाती जा रही है प्रकृति से जुड़ी हुई प्राचीन शैली और आज के विज्ञान और तंत्रविज्ञान का समुचित समन्वय करके संतुलित स्वस्थ, शुद्ध जीवन शैली निर्माण करनी होगी। USE AND THROW की विचारधारा को त्याग कर अति आधुनिक भोगवाद के दुष्परिणामों का विचार

⁴⁷² पर्यावरण विकास - अगस्त २००८, पृ. ११

⁴⁷³ लीडर समाचार पत्र इलाहाबाद, ६ अप्रैल १९५५

करके अपना आत्मिक विकास कर सुसंस्कृत प्राचीनतम शाश्वत मूल्यों को अपनाना होगा तभी मनुष्य तनाव मुक्त होकर शुद्ध वातावरण में स्वस्थ जीवन जी सकेगा।⁴⁷⁴

प्राकृतिक संसाधनों के मामले में तो हमें यह मानना होगा कि हम पृथ्वी के मेहमान हैं, मालिक नहीं और यह सब हमें आनेवाली पीढ़ी को सौंपना है। प्रकृति के सारे संसाधन केवल मात्र मानव के लिये ही नहीं हैं, अन्य जीवजन्तुओं एवं वनस्पतियों के लिये भी हैं। पृथ्वी का जीवन भी उनके जीवन के साथ जुड़ा है। पृथ्वी को संकट में डाल कर सबको संकट में डाल रहे हैं। इसलिये नदी, पर्वत, वनस्पतियों, जीवजन्तुओं, मानवों सभी प्राणियों का आधार इस पृथ्वी को सुरक्षित और स्वस्थ रखने के लिये यज्ञादि जैसे सफल वैज्ञानिक कार्य करते रहने से पर्यावरण प्रदूषण से पृथ्वी की रक्षा होगी।

श्री सुन्दरलाल बहुगुणा लेखक, वक्ता एवं सर्वोदय कर्मी कहते हैं - 'जब तक वन तब तक अन्न'। काश्मीर की घाटी हो या गंगा, सिन्धु, ब्रह्मपुत्र, कृष्णा, कावेरी और नर्मदा की उपजाऊ घाटियां, इनके जीवन-प्राण भी इन नदियों के उद्गम और जल गृहण क्षेत्र रहे हैं। क्योंकि वनों में मिट्टी के उपजाऊपन की बढ़ने की प्रक्रिया सदियों से चलती रही है, इसलिये धरती का अपने भोजन के लिये दोहन करने वाले इंसान का ध्यान इस ओर नहीं गया और वह धड़ाधड़ वनों को काटकर कृषि का विस्तार करता रहा।⁴⁷⁵

शोधों से ज्ञात हुआ है कि मानव द्वारा एवं उद्योगों द्वारा उत्सर्जित पदार्थों में से लगभग ७० कि. मी. तक समुद्र के अंदर मुम्बई का समुद्री तट प्रदूषित हो चुका है। यह स्थिति तो समुद्र की है। नदियों का जल तो प्रदूषण का पर्याय बन चुका है। कभी समस्त पापों की विमोचिनी मानी जाने वाली पुण्य नदी गंगा का जल अब जलीय गुणवत्ता के स्तर की दृष्टि से 'बी' श्रेणी में रखा गया है। बी श्रेणी का तात्पर्य है ऐसा जल जो पेय नहीं है, उससे केवल स्नान किया जा सकता है। इलाहबाद, कानपुर एवं बनारस में गंगा के जल की बी.ओ.डी (बयोलोजिकल ऑक्सीजन डिमाण्ड) की मात्रा क्रमशः १५.५, ८.७ तथा १०.६ मिली ग्राम प्रति लीटर मापी गई। इस संबन्ध में गंगा की सहचरी यमुना के आंकड़े तो अत्यन्त चौंकाने वाले हैं। दिल्ली तक पार होते- होते यह नदी नाले में परिवर्तित हो जाती है।

⁴⁷⁴ आधुनिक जीवन और पर्यावरण - दामोदर शर्मा, पृ. ११६

⁴⁷⁵ जब तक वन तब तक अन्न। श्री. सुन्दरलाल बहुगुणा पर्यावरण विकास - २००८, पृ. ५

जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि और आकाश इन पंच तत्वों के द्वारा करोड़ों वर्षों से प्रत्येक जीव की आवश्यकताओं की पूर्ति होती रही है किन्तु विगत सौ वर्षों से बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं में वृद्धि के कारण मनुष्य अपनी वैज्ञानिक उपलब्धियों से औद्योगिक प्रगति करता गया परिणामतः प्रकृति का आवश्यकता से अधिक दोहन होता रहा है, उसके दूषित परिणामों को आज भी अनदेखी कर रहा है।

स्व.श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने प्राकृतिक संसाधनों के दोहन पर टिप्पणी करते हुए कहा था “मनुष्य प्रकृति का एक भाग है औरबहत सी प्रजातियों में से एक है जो पृथ्वी पर रहते हैं,लेकिन वह उसको अपनी संपत्ति समझ कर शोषण करता है।” महात्मा गान्धी ने भी यही कहा “लोगों की आवश्यकता की पूर्ति के लिये प्रकृति के पास सब कुछ है, पर किसी एक के लालच के लिये नहीं”।

वैज्ञानिकों में इस विषय में कोई दो मत नहीं है कि पर्यावरण गरम होता जा रहा है, लेकिन प्रश्न यह उठता है कि कितनी तेजी से और इसे रोकने के लिये क्या करना होगा? ‘Woods hall research centre’ के सीनियर साइंटिस्ट और पृथ्वी के carbon cycle के जानकर रिचर्ड ह्यूटन कहते हैं कि ग्रह नक्षत्र और उसके पर्यावरण कई तरह से carbon-di-oxide को अवशोषित करते हैं और छोड़ते हैं। यही तापमान बढ़ने का मूल कारण है। लेकिन carbon उत्सर्जन की बढ़ती मात्रा पर वे सचेत करते हैं कि वातावरण से इस गैस की मात्रा कम करने की जमीन और सागरों की क्षमता कमजोर पड़ सकती है। अगर ऐसा सचमुच होता है तो हम ऐसे ग्रह की रचना कर रहे हैं जो अपने नुकसान की भरपाई स्वयं नहीं कर सकता है।⁴⁷⁶

धरती खतरे में है। अब यह एक चेतावनी ही नहीं रही यह सच्चाई है। पृथ्वी गर्म हो रही है, इसके साथ ही साथ मुसीबतों का सिलसिला शुरू होने जा रहा है। १३० देशों के २,५०० scientists की मदद से तैयार अपनी रिपोर्ट Inter-Governmental Panel on climate change ने जो बातें कही हैं वो किसी संदेह की गुंजाइश नहीं रहने देतीं। धरती की गर्मी इस सदी में १.५ डिग्री बढ़ जाएगी जिससे मौसम गड़बड़ा जाएंगे ग्लेशियर पिघलेंगे, समुद्र तटीय शहर डूबेंगे और करोड़ों जिन्दगियां तबाह हो जाएंगी, बीमारियों का खौफनाक हमला होगा,

⁴⁷⁶ Woodshall Research Centre – Sr.Scientist - रिचर्ड ह्यूटन

गंगा गायब हो जाएगी, कई पौधों, पशु-पक्षियों की प्रजातियां गायब हो जाएंगी, फसलों की पैदावार घटेगी, बूंद-बूंद को मोहताज होगी धरती, बाढ़, सूखा, तूफान, आग से मरेंगे लोग और शताब्दी के आखिर तक दुनिया भर में करीब १ करोड़ लोगों के सामने पानी की किल्लत होगी। ये लोग ग्लेशियर के पिघलने पर पहाड़ों से आनेवाले पानी की सप्लाई पर निर्भर है। ग्लेशियरों के पिघलने से शुद्ध पानी की सप्लाई १०-४० फीसदी तक बढ़ जाएगी लेकिन बाद में वाष्पीकरण और उसके इस्तेमाल से पानी खत्म हो जाएगा।⁴⁷⁷

५.३ Global warming -

आज वह सुरसा बन चुकी है, जो मुंह फाड़े पूरी मानव सभ्यता को निगलने को तैयार बैठी है। विशेषतः समुद्र के किनारे बसे लोगों को global warming and pollution जैसे शब्दों ने भीतर तक हिला दिया है। इसका कारण है वर्तमान में हर वर्ष बाढ़ जैसी स्थिति और समुद्र में, मुम्बई जैसे शहरों का समुद्र में समाहित हो जाने जैसी खबरें। ग्लोबल वार्मिंग के कारण ध्रुवों की बर्फ पिघलने और इससे समुद्री स्तर धीरे-धीरे बढ़ते जाने से खतरे की घंटी लगातार सुनाई दे रही है, अतः प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि अपने अस्तित्व को बचाने का, पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता लाने का प्रयास शुरू कर दे। दुनिया के हर देश को इससे मुकाबले के लिये अपनी तरफ से ईमानदारी से प्रयास करना चाहिये, ताकि आनेवाली पीढ़ियों को भी धरती उतनी ही खूबसूरत नजर आए, जितनी यह हमें मिली।

हवा, पानी, जमीन, पहाड़, वनस्पतियां, जंगल एवं सकल पदार्थ जो कि हमारे लिये दृश्य या अदृश्य हैं पर्यावरण के अभिन्न अंग हैं। ये हमारे चारों ओर स्थित अवस्थाएं हैं। जो किसी भी जैविक पदार्थ, वस्तु या प्राणी के विकास एवं जीवन को प्रभावित करती हैं।

अनेक सर्व विदित उपायों के साथ वृक्षादि तो आवश्यक हैं ही साथ ही पर्यावरण की गर्मी को कम करने के लिए तथा ऊर्जा की बचत भी करने के लिए ग्लोबल वॉर्मिंग के ग्रीन पीस के कार्यकर्ताओं ने पर्यावरण को होनेवाले नुकसान को मुद्दा बनाया और बिजली की बचत के लिए

⁴⁷⁷ नवभारत टाइम्स २.४.२००७

सी.एफ.एल. और ट्यूब का उपयोग बताया १०० वॉट के बल्ब के बदले मात्र १८ वॉट का सी.एफ.एल. लगाकर उतनी ही रोशनी के साथ ही शीतलता भी पाई जा सकती है।

डॉ.एल.एन.गुप्ता (भूगोलवेत्ता) ने प्राकृतिक संसाधनों के अंधाधुंध दोहन पर चिंता व्यक्त करते हुए पर्यावरण में बढ़ते प्रदूषण के विषय में कहा है – “समय पर सकारात्मक चिंतन नहीं किया गया तो पश्चाताप के अतिरिक्त हमारे पास कुछ भी शेष नहीं रहेगा। आने वाली पीढ़ियां हमें कभी क्षमा नहीं करेंगी”।⁴⁷⁸

आचार्य महाप्रज्ञ पृथ्वी की रक्षा का उपाय मानते हुए लिखते हैं - अनावश्यक हिंसा से बचने का सबसे पहला परिणाम होता है - प्रदूषण की समाप्ति। पर्यावरण के विषय में कवि उदयभानु हंस लिखते हैं -

**जलवायु प्रदूषण से उठो युद्ध करो
कुछ भी न प्रकृति देवी के विरुद्ध करो।
मानवता का अस्तित्व बचाने के लिये
संसार के पर्यावरण को शुद्ध करो ॥**

ऋग्वेद तथा अथर्ववेद में भूमि के चारों ओर विद्यमान पर्त के लिये ‘उल्ब’ शब्द आया है और उसे स्थविर अर्थात् स्थूल या मोटी पर्त कहा है। उल्ब शब्द गर्भस्थ शिशु के ऊपर ढकी हुई झिल्ली के लिये आता है। यहां पृथ्वी रूपी शिशु की रक्षा के लिये ओजोन की पर्त को महान् और स्थूल उल्ब कहा है -

महत् तदुल्बं स्थविर तदासीद्, येनावेष्टितः प्रविवेशिथापः ॥⁴⁷⁹

आज वैज्ञानिक ओजोन पर्त की झिल्ली जिसे वैदिक भाषा में 'उल्ब' कहते हैं, उसे भरने की चिन्ता से ग्रस्त हैं। वायुमंडल में १६ से २५ किलोमीटर चारों ओर ओजोन पर्त द्वारा प्राकृतिक सुरक्षा की व्यवस्था है, जो सूर्य प्रकाश की हानिकारक पराबैंगनी किरणों को रोकने का कवच का काम करती है। ओजोन पर्त के क्षतिग्रस्त होने से पर्यावरण की स्थिति भयावह हो गई है। इस पर्त के एक बार नष्ट होने पर इसे पुनः बनाने में २० वर्ष तक लग सकते हैं, लेकिन अथर्ववेद में ऋषियों ने इसकी भी सुरक्षा का उपाय बताया है -

तस्योत्त जायमानस्योल्ब आसीद् हिरण्ययः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥⁴⁸⁰

⁴⁷⁸ भूगोलवेत्ता - डॉ.एल.एन.गुप्ता

⁴⁷⁹ ऋक्. - १०.७१.१

अर्थात् - उत्पन्न हुए इस संसार की उलब (गर्भरूपी झिल्ली) ओजोन तेजोमय है। ओजोन का रंग हिरण्यमय सुनहरा बताया गया है। उस सुखदायक ओजोन झिल्ली को हविषा यज्ञ की आहुतियों द्वारा प्राप्त करें। इस प्रकार हम समझ सकते हैं कि ओजोन पर्त की रक्षा का भी एकमात्र उपाय यज्ञ का स्निग्ध धुंआ ही है और जल, वायु, पृथ्वी का भयावह, विनाशकारी प्रदूषण यज्ञाग्नि ही नष्ट कर सकती है क्योंकि अग्नि कभी दूषित नहीं हो सकती वह दूषित पदार्थ को भस्म करती है।

जब हम विविध प्रकार के प्रदूषण एवं स्रोतों का विश्लेषण करते हैं तो यह तथ्य सामने आता है कि सर्वाधिक प्रदूषण करने वालों में ऊर्जा प्राप्ति हेतु जलाया जानेवाला ईंधन है। चाहे वह भोजन निर्माण के लिए वन सम्पदा का भस्मीकरण हो अथवा बड़ी-बड़ी मानव ज्वालामुखियों में जलाये जानेवाला विविध ईंधन हो या फिर गति, शक्ति एवम् ऊष्मा के लिए दहन किया गया जीवाश्म, कार्बनिक, तेलीय एवं गैसीय ईंधन हो। इन सभी ईंधनों के जलने से एक तरफ जहाँ प्राकृतिक अमूल्य तत्त्व जलकर नष्ट हो जाते हैं और पारिस्थितिक असन्तुलन उत्पन्न करते हैं वहीं दूसरी ओर इनसे उत्सर्जित धुआं वायु, जल, पृथ्वी सभी को प्रदूषित कर देता है।

यदि वैदिक ऋषियों के आशीर्वाद पर दृष्टिपात करें तो निश्चय ही कुछ कालावधि में प्रदूषण पर उपद्रव रहित व हिंसा रहित विजय पा सकते हैं।

सूर्यो नो दिवस्पातु, वातो अन्तरिक्षात्। अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः।⁴⁸¹

अर्थात् सूर्य द्युलोक में स्थित होता हुआ हमारी रक्षा करे, वायु अंतरिक्ष में और अग्नि पृथ्वी पर रहता हुआ पार्थिव पदार्थों में स्थित होकर हमारी रक्षा करे। द्युलोक में स्थित सूर्य ऊर्जा का अजस्र स्रोत है। यदि इससे पृथ्वी को प्रवाहमान ऊर्जा का समुचित प्रयोग कर सकें तो सम्पूर्ण ऊर्जा का संकट और आधुनिक ऊर्जा स्रोतों के प्रयोग से उत्पन्न प्रदूषण भी प्रयोगाभाव के कारण उत्पन्न नहीं होगा।⁴⁸²

⁴⁸⁰अथर्व.- ४.२.८

⁴⁸¹ ऋक्.- १०.१५८.१

⁴⁸² अथर्व.- ४.२.८

सूर्य पृथ्वी से १५ करोड़ कि. मी. की दूरी पर है। इसका व्यास १३ लाख १२ हजार कि. मी. है। यह वजन में पृथ्वी से ३३०,००० गुना है और आकार में पृथ्वी से ११० गुना बड़ा है। सूर्य प्रतिक्षण अपनी ५६ करोड़ ४० लाख टन हाइड्रोजन को जलाता है जिसे वह हीलियम में परिवर्तित करता है। सूर्य की यह प्रक्रिया लगभग पाँच अरब वर्षों से निरन्तर चल रही है। इससे स्पष्ट निष्कर्ष प्राप्त होता है कि सूर्य की ऊर्जा अत्यधिक एवम् अनन्त है। इसलिए हमारी पृथ्वी को सूर्य से प्रति वर्गमील ४६,७०,००० ऊर्जा प्राप्त होती है। विश्व में उपलब्ध सम्पूर्ण ईंधन को गलाने से उत्पन्न ऊर्जा तो सूर्य दस दिन में ही प्रदान कर देता है।⁴⁸³

भारत में परम्परागत ज्ञान से ज्ञात होता है कि रामायण काल में सौर ऊर्जा उपयोग में ली जाती थी। यदि आज ऊर्जा के संकट के दौर में वैज्ञानिक सौर उर्जा और वायु ऊर्जा का सम्पूर्णता से प्रयोग करने की प्रौद्योगिकी विकसित कर लें तो यह वेद का आशीर्वाद - 'सूर्यो नो दिवस्पातु वा नो अन्तरिक्षात्' वरदान सिद्ध हो सकता है।

अमेरिका जैसे प्रगतिशील राष्ट्र में चक्रीवात बादलों से जबरदस्त नुकसान हुआ। मुम्बई में और आस-पास सब ,सप्ताह भर तक जलमग्न हो गया था। समुद्र के नीचे तेल का अत्यधिक रिसाव होने से एवं समुद्र में होने वाली भूकम्प की तीव्रता बढ़ने से सुनामी जैसी विनाशकारी लहरों की तलवार हम लोगों के सिर पर लटक रही है। भौतिक विज्ञान में प्रचंड प्रगति करने वाले आज के प्रगति युग का मानव प्रकृति के सामने, परमेश्वर की ताकत के सामने एवं पंचमहाभूत के सामने पूर्णतः निर्बल, असहाय हो गया है। आधुनिक युग की मर्यादा सबको जान लेनी चाहिये। मानव जाति की ऐसी दुर्दशा सब युगों में सब कालों में कभी न कभी होती ही है। मनुष्य को अंतर्मुखी करने के लिये प्रकृति को कभी मात नहीं करना है, किन्तु उसे अपने साथ लेकर चलना है। nature is our teacher - प्रकृति प्रथम गुरु है।

निसर्ग के पञ्चमहाभूत के कार्य और उसके पोषण को समझ कर मानवी जीवन समृद्ध करना चाहिये। यज्ञपञ्चमहाभूत की तृप्ति के लिये-, निसर्ग का सन्तुलन रखने के लिये, मानव कल्याण के लिये, विश्वकल्याण के लिये यज्ञ- जैसा सरल, कम खर्च का, समय बचानेवाला, शीघ्र फलदायी, अहिंसक, घर बैठे करने जैसा सरल उपाय और कोई नहीं है।⁴⁸⁴

⁴⁸³ Philosophy of Vedas - K. M. Talreja P. २८०-२८१

⁴⁸⁴ ब्राह्मण ग्रन्थों में प्रतिबिम्बित समाज एवं संस्कृति - डॉ. धीरेन्द्र सिंह, पृ. २५३

युगधर्म पर्यावरण संरक्षण में प. श्रीराम शर्मा आचार्य ने उल्लेख किया है कि वातावरण की विषाक्तता के परिशोधन में यज्ञ द्वारा उपचार की सनातन परम्परा ही सफल हो सकती है। सत्प्रवृत्तियों का विकास भी यज्ञीय प्रवृत्तियों के प्रसार से ही सम्भव है। वातावरण का संतुलन परिशोधन तथा प्राकृतिक प्रकोपों के लिये यज्ञानुष्ठान का पुनः प्रचलन व्यापक स्तर पर करना होगा, क्योंकि यही यज्ञ देवता वातावरण को परिशोधित तथा संतुलित रखते हैं। संतुलित वातावरण मानवी सुख समृद्धि का आधार है।⁴⁸⁵ शोषण और विषमता जितनी कम होगी पर्यावरण उतना ही समृद्ध होगा, पर्यावरण की समृद्धि ही सम्पूर्ण विश्व की समृद्धि है।

सन् १९९२ में आयोजित 'रियो डि जिनेरो' के पृथ्वी सम्मेलन में १६० से भी अधिक देशों के राष्ट्राध्यक्षों व शासनाध्यक्षों के साथ महान् पर्यावरणाविद् उपस्थित हुए थे। सभी ने वर्तमान प्रदूषण पर चिन्ता व्यक्त की और पर्यावरण संरक्षण के लिये सैंकड़ों अरब डॉलर आवंटित करने की एक कार्य योजना पारित की।

यू. एन. ई. पी. के निदेशक एलिजाबेथ डाइसबेल ने अपने संदेश में समुदाय का आव्हान करते हुए कहा "पर्यावरण की सुरक्षा विश्व की सुरक्षा है अतः विश्व के हर नागरिक का कर्तव्य है कि वह इस ओर कटिबद्ध हो"।

विकासशील दुनिया के प्रमुख राजनीतिज्ञ एवं राष्ट्रकुल के पूर्व महा सचिव श्री दत्त रामफल ने वर्तमान पर्यावरण संकट को अति गंभीर बताते हुए स्पष्ट किया है कि- 'पर्यावरण संरक्षण ही आज का युग धर्म है'।

इतने सारे सम्मेलनों, चेतावनियों एवं पर्यावरण सुरक्षा का विशालकाय तंत्र खड़ा करने के बावजूद भी प्रश्न यथावत् है। समस्या की विकरालता घटने के स्थान पर बढ़ी ही है क्योंकि प्रकृति के साथ मनुष्य की भावना और प्रगाढ़ संबन्धों का मर्म नहीं समझाया गया।

प्राचीन काल से हमारे ऋषि-मुनियों, दार्शनिकों ने मानव संस्कृति, मानव व प्रकृति एवं परमेश्वर के पारस्परिक संबंधों को व्याख्यात किया है। वेदों में यज्ञ की महिमा के साथ यह दर्शाया गया है कि- मानव एवं प्रकृति के समस्त घटकों तथा सम्पूर्ण छोटे-बड़े प्राणियों में परमेश्वर की पराचेतना का अनुभव करें। पर्यावरण ही सृष्टि का आधारभूत जीवन तत्व है, इसका संरक्षण, संवर्धन हम सबके जीवित रहने का आधार है, इसी पर कृषि एवं औद्योगिक क्रान्ति भी निर्भर है।

⁴⁸⁵ युगधर्म - पर्यावरण संरक्षण - पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, शान्तिकुंज हरिद्वार

शास्त्रों में वर्णन है कि मनुष्य जितनी गन्दगी फैलाता है उसकी स्वच्छता के लिये तथा वातावरण को परिशोधित करने के लिये यज्ञ कर्म करना चाहिये। यज्ञ देवता वातावरण को परिशोधित करते हैं तथा संतुलित करते हैं। उसके प्रभाव से ऋतुएं समय पर आती हैं, संतुलित वातावरण से पौष्टिक अन्न, वनस्पतियां उत्पन्न होती हैं, प्राणी स्वस्थ और निरोग रहता है। भारत ने आध्यात्मिक ही नहीं भौतिक अनुदानों से भी विश्व के मानव को तृप्त किया है। कालान्तर में मनुष्य के भ्रष्ट चिन्तन तथा दुष्ट कर्तृत्व के कारण यह परोपकारी यज्ञ-प्रक्रिया बंद हो गई और वातावरण के प्रदूषण के साथ लोगों का मानसिक प्रदूषण भी बढ़ने लगा जो वायुमण्डल में बढ़ती विषाक्तता से भी भयंकर सिद्ध हुआ।⁴⁸⁶

डॉ. पी.बी. पाल मानते हैं कि- “ब्रम्हांड में पृथ्वी ही केवल ऐसा स्थल है जहां जीवन संभव है यहां विभिन्न प्रजातियों के जीव अपना जीवन यापन कर रहे हैं, किन्तु मनुष्य जैसे सर्वश्रेष्ठ प्राणी ने पृथ्वी को नष्ट करना प्रारंभ कर दिया है”।⁴⁸⁷

अमेरिका के मनोवैज्ञानिक- आर्निकेन के अनुसार हवा की महक और स्मृति के बीच गहरा संबंध होता है। इस सुगन्धित धुंए के माध्यम से खोई हुई याददाश्त को वापस लाया जा सकता है तथा हवन के जलने पर कुछ ऐसी भी महक उत्पन्न होती है जो खून में एंड्रीनलीन की मात्रा को बढ़ा देती है। हवन में केशर, चन्दन, जायफल के जलने से उत्पन्न सुगन्ध मन को शान्ति प्रदान करती है और यौनशक्ति की वृद्धि भी करती है।

डॉ. एफ. फैलिंग. (Dr.F.Falling) का मत है कि सूर्य, यज्ञ की ध्वनि, गैस तथा कणों से वातावरण को पवित्र करने में सहयोग मिलता है।

अंग्रेजी शासन काल में डॉ.कर्नल किंग, आई.एम.एस. मद्रास,(चेन्नई) के सेनेटरी कमिश्नर थे। उनके समय में वहां प्लेग फैल गया। तब १५ मार्च, १८९८ को मद्रास युनिवर्सिटी के विद्यार्थियों के समक्ष भाषण देते हुए उन्होंने कहा था,- ‘घी और चावल में केसर मिलाकर अग्नि में जलाने से प्लेग से बचा जा सकता है’। इस भाषण का सार हैफकिन ने ब्यूबानिक प्लेग नामक पुस्तक में देते हुए लिखा था - हवन करना लाभदायक और बुद्धिमत्ता की बात है।⁴⁸⁸

⁴⁸⁶ वैदिक चिन्तन और आधुनिक पर्यावरण-विज्ञान - डॉ. बृहस्पति मिश्र

⁴⁸⁷ डॉ.बी.पी.पाल – ‘आर्थिक वनस्पति विज्ञानी’

⁴⁸⁸ अग्निहोत्र चिकित्सा - श्याम सुंदर गंधे

५.४ यज्ञ को आधुनिक विज्ञान के रूप में देखने पर –

१.रूस के वैज्ञानिक श्री शिरोविच ने एक पुस्तक में लिखा है कि गाय के घी - को अग्नि में डालने से उससे उत्पन्न धुंआ परमाणु विकीरण के प्रभाव को बड़ी मात्रा में दूर कर देता है। भारतीय परिप्रेक्ष्य में यह प्रक्रिया 'यज्ञ' के नाम से जानी जाती है।-शिरोविच

२. विभिन्न रोगों के जन्तुओं को समाप्त करने के लिए यज्ञ से सरल तथा सुलभ पद्धति और कोई नहीं है।

३.शक्कर के दहन से धुंए में पर्यावरण परिशोधन की विचित्र शक्ति है। इससे क्षय रोग, चेचक, हैजा आदि बीमारियों के विषाणु नष्ट हो जाते हैं। - वैज्ञानिक तिलबर्ट-फ्रांस

४.अमेरिका के किसी डॉक्टर ने एक बार मुम्बई में भाषण देते हुए कहा था, हम लोग सैंकड़ों वर्षों से इस खोज में थे कि फेफड़ों की तपेदिक को गैस की सुगन्ध से अच्छा किया जा सके। अब हम इसमें सफल हो गए हैं और इस चिकित्सा परिणाम सब चिकित्सकों से बेहतर रहा है।⁴⁸⁹

५.डॉ.फुन्दनलाल अग्निहोत्री ने मध्यप्रदेश की राजकीय टी.बी. सेनेटोरियम जबलपुर में यज्ञ के द्वारा तपेदिक के रोगियों की चिकित्सा की तथा ८० प्रतिशत रोगियों को इस विधि से पूर्ण लाभ हुआ।⁴⁹⁰

६.मुनक्का, किशमिश, मखाने आदि से हवन करने से सड़िक्षपात ज्वर, टाईफाइड के कीटाणु मात्र घन्टे भर में समाप्त हो जाते हैं। - डॉ. डीलिट

७.अग्नि से वायु शुद्ध होती है। - प्लुटार्क

८.३६-२२-१० लगभग ८००० वर्गफुट के एक हॉल में एक समय हवन करने से कृत्रिम रूप से निर्मित प्रदूषण ७७.५ प्रतिशत भाग नष्ट हो गया, ६६ प्रतिशत हानिकारक कीटाणु नष्ट हो गए। फर्ग्युसन कालेज पुणे के जीवाणु शास्त्रियों का प्रयोग बताता है।

९. अमेरिका, चिली, पोलैण्ड, जर्मनी आदि देशों में अग्निहोत्र (हवन) की लोकप्रियता बढ़ रही है।

⁴⁸⁹ सुनिता नारायण प्रदूषण की मार से कमजोर होते पेड़ों के फेफड़े

⁴⁹⁰ यज्ञ चिकित्सा १९४९, डॉ. फुन्दनलाल

१०. विश्व के अनेक देशों में रोगों को दूर करने के लिये, प्रदूषण को दूर करने के लिये तथा कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए यज्ञ चिकित्सा का प्रचलन बढ़ रहा है।

११. आधुनिक विद्वानों ने यज्ञ की वैज्ञानिकता पर प्रकाश डालते हुए भी वायु शुद्धि का उपाय बताया है। - Medicated air through Yajna is only remedy to nullify Pollution. Yajna is itself Pure and a purifier. It purifies air in the atmosphere.⁴⁹¹

१२. आधुनिक शोधकर्ताओं ने भी यज्ञ को प्राकृतिक प्रकोप से बचाने वाला माना है - वैदिक आर्यों के लिये प्राकृतिक आपदाओं का भय सबसे बड़ा भय था और प्राकृतिक शक्तियों को ही उन्होंने देवताओं के रूप में परिकल्पित किया था। अतः अपनी प्रत्येक उपलब्धि तथा इच्छाओं की पूर्ति हेतु ये देवताओं को प्रसन्न करना आवश्यक मानते थे, जिसका माध्यम उनकी दृष्टि में अग्नि में दी जाने वाली आहुति थी।⁴⁹²

प्लेग के दिनों में अब भी गंधक जलाई जाती है क्योंकि इससे रोगकीट नष्ट होते हैं। उपर्युक्त सत्य कथन में वर्णित पदार्थों को जलाने से कृमिनाशक गैसें उत्पन्न होती हैं। किन्तु यज्ञ की घी, सामग्री, समिधा आदि में अन्य अनेक द्रव्य होते हैं उनसे उत्पन्न होने वाली सभी गैसों और भी अधिक लाभदायक व उपयोगी होती हैं।⁴⁹³

इस प्रकार प्राचीन साहित्य के उद्धरणों एवं देश-विदेश में सम्पन्न वैज्ञानिक शोध-कार्यों के आधार पर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि यज्ञ या अग्निहोत्र प्राणि मात्र के लिए परम उपयोगी है। अथर्ववेद के अनुसार यज्ञ के प्रयोग कर्ता सुख और समृद्धि की पराकाष्ठा प्राप्त कर लेते हैं -

ईजानाःस्वर्गं यन्ति लोकम्।⁴⁹⁴

और यज्ञ न करने वाले का वर्चस्व नष्ट हो जाता है -

⁴⁹¹ अग्निहोत्र चिकित्सा, श्याम सुंदर गंधे

⁴⁹² यज्ञविमर्श, डॉ. रामप्रकाश, पृ.-६८

⁴⁹³ गायत्री महापुरश्चरण - महायज्ञ।

⁴⁹⁴ अथर्व. -१८.४.२

अयज्ञियो हतक्वा भवति।⁴⁹⁵

गीता में कहा है –

देवा भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।

परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ॥⁴⁹⁶

तुम सब यज्ञीय कर्मों द्वारा देवताओं को प्रसन्न करो । देवता प्रसन्न होकर प्रकृति को संतुलित और व्यवस्थित रखते हैं। इस प्रकार दोनों को प्रसन्न करते हुए सदा कल्याण को प्राप्त करें। गीता में यज्ञ को मानवीय कर्मठता का प्रतीक माना है –

यज्ञ कर्मसमुद्भवः⁴⁹⁷

तथा यज्ञ शेष के उपयोग को सब क्लेशों का छुड़ाने वाला कहा गया है –

यज्ञशिष्टाशिनः सन्तो मुच्यन्ते सर्वकिल्बिषैः⁴⁹⁸

आचार्य चाणक्य कहते हैं -

न विप्रपादोककर्मदमानि

न वेदशास्त्रध्वनिगर्जितानि।

स्वाहा स्वधाकार विवर्जितानि

श्मशान तुल्यानि गृहाणितानि ॥⁴⁹⁹

जिन घरों में ब्रह्मनिष्ठ ब्राह्मणों, ऋषि-मुनियों के पैरों को धुलाने वाले जल से कीचड़ नहीं हो जाता, जहां वेद-शास्त्रों की ध्वनि नहीं गूंजती, जहां स्वाहा एवं स्वधाकार की ध्वनि से यज्ञादि कर्म नहीं होते, वे घर श्मशान-भूमि के समान हैं। अर्थात् धर्म-यज्ञादि कर्म रहित घर शवों का निवास स्थान है, श्मशान है।

वैदिक धर्म यज्ञ प्रधान धर्म है, वेदों में से यदि यज्ञ को निकाल दें तो वह निष्प्राण हो जाएगा । पूर्व मीमांसा दर्शन में धर्म का अर्थ ही यज्ञ किया गया है। यज्ञ केवल मात्र कर्मकाण्ड ही

⁴⁹⁵ अथर्व. -१२.२.३६

⁴⁹⁶ भ. गी. ३.११

⁴⁹⁷ भ. गी. ३.१४

⁴⁹⁸ भ. गी. -३.१३

⁴⁹⁹ चाणक्यनीति- १२.१०

नहीं है, यह 'धरती का लघु सूर्य' मानसिक, आध्यात्मिक, शारीरिक और पर्यावरण को शुद्ध, पवित्र करने की प्रतीकात्मक मूल्य-बोध को जगाने वाली प्रक्रिया है।

तात्पर्य यह है कि यह एक ऐसी उत्तम वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिससे प्रदूषण दूर होता है, समस्त चराचर प्रकृति सुजलां, सुफलां होकर, स्वस्थ व लाभदायक गुणों से युक्त बनती है। घरों में जो दैनिक हवन-यज्ञ होते हैं, वे अल्प परिमाण में होने पर भी प्रत्यक्षतः उनका अभीष्ट प्रभाव उनके आस-पास के पर्यावरण के लिये पर्याप्त होता है, किन्तु जहां बृहत् यज्ञीय सत्र होते हैं, घृत की अगणित धाराएं औषधियुक्त सामग्री, द्रव्यों व समिधाओं से संस्कृत होकर जब जलती हैं तब उनका धूम दूर-दूर तक के पर्यावरण के प्रदूषण को अवश्य ही समाप्त करता है अतः यज्ञ को श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है- “यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म” । यहां आचार्य डॉ. वागीश का कथन यथार्थ प्रतीत होता है कि ‘विश्व के तमाम वैज्ञानिक मिलकर बहुत सोच विचार और अनुसंधान के बाद जो भी कोई उपाय सोचेंगे, उसमें किसी न किसी रूप में अग्नि के साथ प्रदूषण नाशक पदार्थों का संयोग अवश्य सम्मिलित करना पड़ेगा और इस तरह वह अग्निहोत्र का ही बदला हुआ रूप होगा, किन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि वैसा कोई उपाय ढूंढ कर वे केवल प्रदूषण को दूर कर सकेंगे, जो कि अग्निहोत्र का एक बहुत छोटा सा और अनायास ही प्राप्त हो जाने वाला लाभ है, किन्तु हम बलपूर्वक कहना चाहते हैं कि दुनिया की किसी भी वैज्ञानिक प्रयोगशाला में वह दिव्य भावना कभी भी उत्पन्न नहीं की जा सकेगी, जो अग्निहोत्र करते समय यजमान के मन में ‘इदं न मम’ के उच्चारण के साथ उत्पन्न होती है’। पञ्चमहाभूत प्रकृति के इस पर्यावरण को प्रतिदिन घर-घर में एक यज्ञ द्वारा शुद्ध रखकर हम अपनी भावी पीढ़ी को एक प्रदूषणरहित, स्वच्छ, स्वास्थ्यवर्धक, मनोहर वतावरण की धरोहर देकर जाएं, एक आदर्श प्रस्तुत कर जाएं। हमें यह भी नहीं भूलना है कि भारतीय दर्शन के अनुसार पुनः इसी धरती पर पुनर्जन्म लेकर हमें भी आना है, तो हम अपने लिये भी पर्यावरण की रक्षा करें।

विश्व के वैज्ञानिकों को यज्ञ की उपादेयता पर सभी दृष्टि से अनुसंधान करना चाहिए और उसके परिणामों को जन-जन तक संप्रेषित करना चाहिये । तभी इस धरा पर हरित-क्रांति और

श्वेत-क्रांति की भांति यज्ञ-क्रांति भी आ जाए जिससे हमारी पृथ्वी शुद्ध पवित्र होकर सुजलां, सुफला, मलजय शीतलां, शस्य श्यामलां बन जाये ।

पुनश्च यज्ञ, विश्व के विद्वत् जनों द्वारा प्रमाणित एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है । अतः रोग-निवारण, प्रदूषित पर्यावरण की शुद्धि एवं सन्तुलन जैसी समस्याओं के समाधान के लिये यज्ञ का प्रचार और प्रसार होना आवश्यक है। इससे मानव ही नहीं सम्पूर्ण जड़-चेतन पञ्चमहाभूत प्रकृति लाभान्वित हो सकती है

उपसंहार

पर्यावरण समस्या का यज्ञप्रक्रिया द्वारा समाधान के विषय में जो समीक्षा तथा आलोचना पहले के पांच अध्यायों में की गई है, उसीका निष्कर्ष हम यहां प्रतिपादित कर रहे हैं। एक दृष्टि से देखा जाए तो जिन तथ्यों को हमने प्रस्तुत किया है उन्हीं का सिंहावलोकन कर रहे हैं।

वेद, वैदिक संस्कृति के मूल स्रोत हैं और यज्ञ वेदों की आत्मा हैं, जिसमें अग्नि, जल, वायु, पृथ्वी और आकाश को प्रदूषण रहित करने के सामर्थ्य का उल्लेख बारम्बार किया गया है। वैदिक संस्कृति में प्रकृतिप्रेम और उसका संरक्षण बहुत महत्वपूर्ण भाग है। प्राचीन मनीषियों ने प्रकृति को माता और प्राकृतिक शक्तियों को देवता स्वरूप माना है। प्राकृतिक परिवेश को आज पर्यावरण से संबोधित किया जाता है। तुलनात्मक दृष्टि से कहा जा सकता है कि पर्यावरण और प्रदूषण की प्राचीन अवधारणाएं, आधुनिक धारणा से एकदम भिन्न नहीं थीं। उस समय प्राकृतिक संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे, तब जीवन में सादगी थी। अतः सुखोपभोग की लालसा भी तीव्र नहीं थी।

भूमण्डल पर जीवन के अस्तित्व को सर्वाधिक भय पर्यावरण के असंतुलन से ही है। दैनिक जीवन में प्राकृतिक दोहन की अधिकता से पर्यावरण सुरक्षित नहीं रह गया है। प्रदूषण के कारण चारों ओर व्याप्त विषाक्तता से जीवन का संकट गहराता जा रहा है। अकल्पित व अचिन्त्य रोगों की उत्पत्ति साध्यासाध्यता की विवेचनाएं सभी शोधों के बाद भी अपर्याप्त हो रही है। इस समस्या के समाधान के लिये प्रस्तुत शोधप्रबन्ध में यज्ञ से संबंधित पर्यावरणीय सामग्री का आंकलन, अनुशीलन तथा विश्लेषणात्मक समीक्षण प्रस्तुत किया गया है। इस शोध के द्वारा यह स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है कि वेदों में प्रतिपादित यज्ञों द्वारा पर्यावरण की रक्षा होकर संसार में कैसे स्थापित हो सकती है।

इस शोधप्रबन्ध में यज्ञों में प्राप्त होने वाले पर्यावरण विषय सम्बन्धी यज्ञों का संकलन करते हुए उनका व्यावहारिक अनुशीलन किया गया है। एवं पर्यावरण की भीषण समस्या के इस युग में जीवन के लिये आवश्यक निर्देशों को प्रस्तुत करने के साथ, उनके पालन से इस दिशा में प्राचीन यज्ञ एवं पर्यावरणविद मनीषियों एवं ऋषियों के द्वारा किये गए दूरगामी चिन्तन के

परिशीलन को भी प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। यह शोधकार्य यज्ञों में पर्यावरण की दृष्टि से उपलब्ध होने वाली सामग्री के अनुशीलन का विनम्र प्रयास रहेगा। यह प्राचीन भारत के मनीषियों द्वारा किये गए पर्यावरण से संबंधित चिन्तन को प्रकाशित करता है, ताकि मनुष्य सब प्रकार के तनावों से मुक्त रहते हुए, सौ वर्ष तक स्वस्थ एवं दीर्घायु पाकर जीवित रह सके और प्रदूषण मुक्त पर्यावरण में समस्त चराचर रमणीय प्रकृति के सुखों का उपभोग कर सके।

विद्वानों के अनुसार भी वेद में सम्पूर्ण विज्ञान, यज्ञ के रूप में ही प्रगट किया गया है। यज्ञ रोग निवारण और पर्यावरण संतुलित रखने की एक प्राचीन वैदिक परंपरा है। प्राणिमात्र के शरीर में अधिकांश रोग दूषित वायु, जल व अन्न के कारण होते हैं। जिस खाद्य पदार्थ का सेवन करते हैं, वह मिट्टी, हवा, पानी तथा सूर्य के प्रकाश से उत्पन्न होते हैं। रासायनिक खाद खेतों में डालने से भूमि के प्रदूषित होने तथा प्रदूषित वायु, जल और पृथ्वी का प्रभाव उत्पन्न खाद्य पदार्थों पर भी पड़ता है। वायु जल प्रदूषित होने का कारण मनुष्य का शरीर है, जो निरंतर अपने शरीर द्वारा वायु जल और अन्न को प्रदूषित करता है। प्रत्येक मनुष्य पर देव ऋण होता है और उसका यह धर्म है कि वह इस ऋण से मुक्ति पाए, इसका कर्तव्य प्रतिदिन अग्निहोत्र करना है। ‘शमु सन्तु यज्ञाः’ यज्ञ हवन कल्याणकारी हों।

पंचमहाभूतों के प्रदूषण को समाप्त करने के लिये एक वैदिक समाधान है हम वर्णाश्रम व्यवस्था का पूर्णतः पालन करें। सभी प्रदूषण यज्ञ द्वारा दूर करें। आज भी ऐसे कई परिवार हैं जो प्रतिदिन यज्ञ करके अपने फैलाए हुए प्रदूषण को नष्ट करके, समाज के प्रति अपना कर्तव्य निभाते हैं।

यज्ञ को इस पृथिवी का ‘लघु सूर्य’ कहा गया है। जिस तरह सूर्य की किरणों के ताप से पृथ्वी का प्रदूषण दूर होकर अनेक लाभ होते हैं, वही कार्य यज्ञ द्वारा होता है। अतः गायत्रीमंत्र, उपासना मंत्र और वेद के कई सुप्रसिद्ध मन्त्रों में सूर्य की महत्वता दर्शाई गयी हैं। तात्पर्य यह है कि सूर्य इस संसार की आत्मा है। इस सत्य को आध्यात्मिक रूप से, वैज्ञानिक रूप से तथा आधुनिक चिकित्साशास्त्र भी सूर्य की किरणों को महौषधि के रूप में स्वीकार करते हैं। सूर्य हमें ऊर्जा और स्वास्थ्य देने वाला है।

अब प्रश्न यह उठता है कि यह कब तक हमारा मित्र बना रह पाएगा ? क्योंकि धरती का तापमान बढ़ रहा है, दक्षिणी ध्रुव के पास ओजोन में छेद हो गया है, यह ओजोन पर्त ही सूर्य की तीव्र पराबैंगनी किरणों से प्रकृति और प्राणियों की रक्षा करता है। ये किरणें कैंसर जैसे रोग अपने साथ लाएंगी, मनुष्य की रोग से लड़ने की क्षमता नष्ट हो जाएगी। गर्मी बेहद बढ़ने से पहाड़ों की बर्फ पिघलकर समुद्र तल को बढ़ाएगी, रेत का साम्राज्य बढ़ेगा, कुएं सूख जाएंगे, लोग शहरों को छोड़ कर जंगलों की ओर भागेंगे, यह कल्पना ही बहुत भयावह है। वेदों में भी इसके उपाय के स्पष्ट संकेत हैं किन्तु इसके लिये हमें परिश्रम करना होगा। सम्पूर्ण विश्व के विद्वान,विशेषतः अमेरिका और जर्मनी के वैज्ञानिक दैनिक यज्ञों पर अनुसंधान कर रहे हैं तथा लाभों का पता लगाने में प्रयत्नशील हैं। यदि निष्ठापूर्वक वैदिक आदेशों का पालन किया जाए और तर्क और इच्छाशक्ति से काम लें तो इस भयावह प्रदूषण से बचा जा सकता है, परन्तु हमारे प्रयास विश्वजनीन होने चाहिये। वेदों में आदर्श अन्तर्राष्ट्रीय भावना के साथ राष्ट्र का सामाजिक व राष्ट्रीय स्वरूप प्रार्थना में वर्णित है। उसमें पर्यावरण से संबंधित कामना भी है –

आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्⁵⁰⁰

अर्थात् राष्ट्र में ज्ञान का प्रचार करने वाले ज्ञानी ! हे ब्रह्मस्वरूप प्रभु हमारे नागरिक श्रेष्ठ कर्मों में प्रवृत्त हों तथा वातावरण प्रदूषण को नष्ट करने के लिये सदा यज्ञ करने वाले हों और वीर हों। जब प्रजा मेघ की कामना करे तब बरसायें, उत्तम धनधान्य, उत्तम वनस्पतियों तथा फल-फूल से धरती समृद्ध रहे और सारी प्रजा सुखशान्ति आनन्द से परिपूर्ण रहे।

इस प्रकार की विशद सर्वहितकारी राष्ट्रीय प्रार्थना में हम कामना करते हैं। कि समय पर ठीक वर्षा हो, यह सब तभी होगा जब यज्ञादि शुभ कर्म होंगे। यह सर्व सम्मति से मान्य है कि इन यज्ञों से मेघमंडल शुद्ध होकर समय पर वर्षा होगी और अतिवृष्टि व अनावृष्टि से हमारी रक्षा भी होगी। यज्ञविधान में इस बात का वर्णन आता है कि विशेष वनस्पतियां डालने से विशेष रोगों से पीड़ित प्राणियों को लाभ मिलता है जल और वायु की शुद्धि के साथ अन्न, वनस्पतियां, फलमूलादि प्रचुर मात्रा में उत्पन्न हों। जो शाकाहारी और फलाहारी होते हैं वे दीर्घायु होते हैं।

वनस्पतियां वृक्षादि भूरोकते हैं क्षरण को, जलप्लावन को रोकते हैं और वायुमण्डल को शुद्ध करते हैं। हमें वन्य पशुओं की भी रक्षा करनी चाहिये। वेद का आदेश है –

मा हिंसी पुरुषं जगत्⁵⁰¹

प्राणी जगत् का विनाश मत करो इससे अनेक लाभ होते हैं, किन्तु आज वनों में जो नये पेड़ स्वतः पैदा हो जाते थे, वे नहीं हो रहे हैं, क्योंकि वृक्ष से गिरने वाले बीज जो वन्य पशुओं के खुरों से जमीन में दब कर स्वतः पैदा होते थे वह नहीं हो रहे हैं। देवदार आदि वृक्षों की कमी का कारण पशुओं की कमी भी है।

औद्योगिक क्रांति और तकनीकी विकास ने मानव को सफलता की नई ऊंचाइयों पर तो पहुंचा दिया लेकिन उसके कारण तेजी से नष्ट होते पर्यावरण के दुष्परिणामों को हमें ही नहीं बल्कि आने वाली पीढ़ियों को भी भुगतना पड़ेगा। यदि अभी भी हम नहीं संभले तो वह दिन दूर नहीं जब हरेभरे पेड़, जंगल, वन्य जीव, सुन्दर फलफूल, वनस्पतियां, स्वच्छ जल, वायु, आकाश और मिट्टी की सौंधी सुगंध सब किस्सेकहानियां बनकर रह जायेंगे।

‘यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे’ जिन पञ्चतत्त्वों से यह शरीर बना है उन्हीं तत्त्वों से ब्रह्माण्ड भी बना है। जैसे मुख से लिया गया भोजन पूरे शरीर को मिलता है, वैसे ही यज्ञ जो इस ब्रह्माण्ड का मुख है, उसमें जो भी पौष्टिक, रोगनाशक पदार्थ डाले जाते हैं वे सभी धूएँ के रूप में प्राणीजगत् तथा पर्यावरण को मिलते हैं। जो निम्न मात्रा में कार्बनडाई आक्साइड बनती है, वह वनस्पतियों के लिये लाभदायक होती है तथा अन्य गैसों से कम हानिकारक होती है।

आज भौतिकवादी विचार धाराओं में लिप्त मनुष्य सभ्य बनने का भ्रम पाल रहा है, किन्तु वास्तव में वह मनोहर, रमणीय प्रकृति से शीतल स्वच्छ जलवायु, उत्तुंग पर्वत शिखर, पवित्र नदियां, वृक्षलतादि और उनपर चहचहाते अनेक पक्षियों, हमारे सहायक पशुओं, जलचर, नभचर ये सभी प्राणी जो प्रदूषण रूपी राक्षस से अनेक प्राकृतिक आपदाओं से हमारी रक्षा करते हैं उनसे दूर होता जा रहा है। प्रकृति भौतिक पदार्थों का अपरिमित भण्डार है। मनुष्य इन अमूल्य धरोहर (Valuable Natural Resources) को पृथ्वी से निकाल कर अपने अनुकूल भोग्य पदार्थों में परिवर्तित कर सुख के साधन जुटाता जा रहा है। वह विज्ञान के क्षेत्र में इतना आगे

501 श्वेताश्वतरोपनिषद्-६

बढ़ गया है कि विकास के साथ कहां कितना विनाश हो रहा है, उस ओर उसका ध्यान ही नहीं है । अब चारों ओर से घिर गए हैं तो सभी देश जागे हैं और पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति सचेत हो रहे हैं तथा आवश्यक कदम भी उठा रहे हैं ।

इस अत्युत्तम श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ को मध्यकाल के कुछ दिग्भ्रमित लोगों ने कुत्सित करने का घृणित प्रयास किया है कि यज्ञों में बलि दी जाती थी, जब कि वास्तविकता यह है कि वेदों में यज्ञ को 'अध्वर' कहा गया है। वस्तुतः यज्ञ के पर्यायवाची 'मेध' शब्द को अजमेध, गोमेध, पुरुषमेध, अश्वमेध इत्यादि शब्दों में देखकर वैदिक यज्ञों में पशु हिंसा विधान का भ्रम होता है। वस्तुतः मेध धातु के 'मेधा संगमनयोर्हिंसाया च' इस धातु पाठ के अनुसार मेधा वा बुद्धि को बढ़ाना, लोगों में एकता व प्रेम बढ़ाना और हिंसा ये तीन अर्थ होते हैं । हिंसा ही इसका एकमात्र अर्थ नहीं हो सकता, जैसा कि लोग भ्रमवशात् समझते हैं। पुरुषमेध, पुरुषयज्ञ, नृमेध, नृत्यज्ञ ये सब पर्यायवाची हैं।

अश्वमेध से तात्पर्य यज्ञ में अश्व की बलि देने से नहीं अपितु राष्ट्र के निवासियों के वीर्य और बल की वृद्धि करने से है और राष्ट्र का अच्छी प्रकार संचालन करने से है। इस बात को ब्राह्मण ग्रन्थों के माध्यम से ही समझा जा सकता है । शतपथ- ब्राह्मण में प्रमाण रूप से अश्व शब्द की व्याख्या की गई है – 'राष्ट्रं वा अश्वमेधः, वीर्यम् वा अश्वः' ⁵⁰² । अजमेध से तात्पर्य अजों (बकरो) से हवन करना नहीं अपितु अज नामक बीजों से है, बकरो का वध करना उचित नहीं है । अज एक धान्य विशेष वाचक शब्द है यह महाभारत के शान्तिपर्व में स्पष्ट रूप से बताया गया है। पन्चतन्त्रकारविष्णु शर्मा ने 'काकोलुकीयम्' में लिखा है कि अजों से व्रीहि या पुराने धान्य का ग्रहण करना चाहिये, न कि बकरो का । इस प्रकार के यज्ञों में पशु-बलि का कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता । अतः मन्त्रों के वास्तविक अर्थों को जानना चाहिये जो कि ब्राह्मण ग्रन्थों तथा वैदिक साहित्य के माध्यमों से जाने जा सकते हैं । सामान्य शब्दों को देखकर उनका उसी प्रकार अर्थ लगा लेना बुद्धिमत्ता का द्योतक नहीं माना जाता।

सम्पूर्ण सृष्टि को सुखमय बनाने का, मानव-जाति व जड़-चेतन जगत् को सुचारु रूप से चलाने का मार्ग दर्शन वेदों में ही मिलता है। जैसे किसी यन्त्र या किसी खिलौने को बनाने वाला उसके साथ उसका उपयोग किस तरह किया जाए, यह बताने के लिये उसके साथ उसका विधि-पत्र भी रखता है, इसी तरह इस ब्रह्माण्ड के रचयिता ने वेद रूपी ज्ञान दिया कि इस अनुपम

502 शत. ब्रा.-१३.१.६.३

सृष्टि का किस तरह सुखोपभोग किया जाना चाहिये। हमारे ऋषि-मुनियों ने उसे भली-भांति समझ कर तदनुरूप ही जीवन शैली अपनाई। जब तक उन आदेशों का पालन होता रहा तब तक पर्यावरण सुखमय रहा, सन्तुलित रहा। भारतीय कर्मकाण्डीय पण्डितों तथा पाश्चात्य विद्वानों, कुछ भारतीय विद्वानों ने भी वेदों के उदात्त अर्थों को संकुचित दायरे में लाकर रख दिया, उसके असीमित सार्वभौमिक ज्ञान को देश जाति की सीमाओं में बांध दिया। वैदिक यज्ञ-विज्ञान, पर्यावरणीय विज्ञान उसकी सुरक्षा और प्रकृति की शुद्धता का मनुष्य के साथ सम्बन्धों का विस्तृत विवेचन करता है। प्रकृति का प्रत्येक पदार्थ, पशु-पक्षी पर्यावरण के सहायक हितैषी हैं, इसका बारम्बार कई मन्त्रों में उल्लेख मिलता है। जब मनुष्य की भोग-लिप्सा बढ़ने लगी और वह अमर्यादित होकर प्रकृति का अनुचित शोषण-दोहन करने लगा तब प्रदूषण भी बढ़ने लगा।

आज आवश्यकता है आधुनिक वैज्ञानिक मान्यताओं को वैदिक मन्त्रव्यों के द्वारा प्रमाणित करने की, वेद-मन्त्रों के साथ मतैक्य सिद्ध करने की। वेद-मन्त्रों के शुद्ध स्पष्ट अर्थ समझा कर यह बताया जाय कि वेदों में जिन्हें देवता कहा गया है, वे शरीरधारी देवता न होकर प्रकृति व प्राणी-जगत् को धारण किये हुए पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि और आकाश ये उपकारक तत्व हैं। इन प्राकृतिक तत्वों को प्रसन्न करना अर्थात् कष्ट देकर दूषित न करना प्राणी मात्र का कर्तव्य है। ये ही प्राणियों को स्वर्ग रूपी सुख देने वाले हैं। इन प्राकृतिक देवताओं का समुचित प्रयोग, उपयोग तथा इन्हें शुद्ध रखना ही देवताओं की सच्ची पूजा है। सृष्टि रचयिता की आराधना के साथ इन देवता तत्वों का संवर्धन, संरक्षण एवं संतुलन बनाए रखना मानव जाति का आवश्यक ही नहीं अनिवार्य कर्तव्य है। पशु-पक्षी, वृक्षादि स्वयं प्राकृतिक रूप से ही पर्यावरण को शुद्ध व संतुलित रखते हैं। एक मनुष्य है जिसे ईश्वर ने विशेष बुद्धि दी है वही अत्यधिक लालची बनकर एक साथ ही अधिक से अधिक सब सुख भोग लेना चाहता है।

आज का विज्ञान भी यज्ञ के महत्व को स्वीकार कर भारतीय ऋषि-मुनियों की प्रज्ञा को मान रहा है तथा उनके प्रति कृतज्ञ है। आधुनिक काल में महर्षि दयानन्द ने इस प्राचीन परंपरा को नया और सहज सरल आयाम प्रदान कर हम पर बहुत बड़ा उपकार किया है। जिस घर में प्रतिदिन नियमपूर्वक यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित की जाती है वहां रोग के कीटाणु स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। वायुमंडल दोषमुक्त और शुद्ध हो जाता है तथा सभी प्राणी निरोगी रहते हैं। यही कारण

है कि सभी उत्सवों, त्यौहारों तथा मांगलिक अवसरों पर प्राचीन काल से यज्ञ अनुष्ठान करने की परम्परा रही है। इन अवसरों पर कौन किस संक्रामक रोग के जीवाणुओं का वाहक है, यह जानना बहुत कठिन है। जहां इन अवसरों पर यज्ञ हुआ करते हैं, वहां यज्ञदेव संक्रामक रोग के जीवाणुओं को दूर ले जाते हैं नष्ट कर देते हैं। यज्ञ के प्रति नकारात्मक पक्ष में कुछ प्रश्न किये जाते हैं, उनका समाधान उपरोक्त अध्यायों में यत्र-तत्र किया गया है। तथापि सर्वप्रथम कार्बन डाइऑक्साइड के विषय में चर्चा की जाए तो यह कहना होगा कि यज्ञ की अग्नि के द्वारा अल्प मात्रा में उत्पन्न कार्बनडाइ ऑक्साइड बनती है, किन्तु वह भी वृक्ष-वनस्पतियों के लिये अत्यन्त लाभकारी होती है, बिना इसके वह जीवित नहीं रह सकते। गोघृत, सुगन्धित, मिष्ट व अनेक लाभकारी औषधियों से युक्त सामग्री तथा ऐसी समिधाएं जिनमें ऑक्सीजन अधिक होता है आम, पीपल, नीम, नीलगिरि, चन्दन आदि की समिधाओं से तथा गाय के गोबर से बने कण्डों से जो कीटाणुनाशक होते हैं, के जलने से जो राख बनती है वह भी कीटाणुनाशक खाद बनती है। इन सभी उत्तम वस्तुओं के जलने से जो धूम निकलता है वह लाभदायक होता है और इसमें जो कुछ मात्रा में कार्बन डाइ ऑक्साइड होती भी है तो वह भी प्राणियों के लिये हानिकारक नहीं होती क्योंकि वह अन्य पौष्टिक तत्वों से भी युक्त होती है।

प्राणियों के श्वासोच्छवास, सिगरेट से पेट्रोल, डीजल तथा अन्य अनेक रासायनिक पदार्थों से दूषित जल-मल से निकली अशुद्ध वायु को भी यज्ञ की सुगन्धित पैष्टिक वायु शुद्ध करती है। समिधाओं के विषय में यह स्पष्ट किया जाता है कि यज्ञ के लिये वही लकड़ियां चुनी जाती हैं जो स्वयं सूख जाती हैं या जिनसे कोयला भी न बनता हो। जिनमें कीड़ा जल्दी लगता हो, क्योंकि उसमें प्राणवायु अधिक है तभी कीड़े उस लकड़ी में रहते हैं और ऐसी लकड़ियों का प्रयोग फर्निचर आदि में नहीं किया जाता। अतः शमी, पीपल, गूलर आम आदि का उपयोग किया जाता है। इन वृक्षों की सूखी टहनियां ही तोड़ी जाती है। यज्ञ के आधार पर ही ऋतुचक्र, वर्षचक्र, अहोरात्रचक्र, सौरचक्र और चान्द्रचक्र परिवर्तित होते रहते हैं। सृष्टि का एक-एक तत्व त्यागशील है। वायु वातावरण को शुद्ध करने में, अग्नि अपावनता को दूर करने में, सूर्य प्रकाश और ताप देकर, द्रव्यों के रसों को खींचकर उनके संशोधन में रत है। समूची सृष्टि यज्ञमय, दानशील और त्यागयुक्त जनहित परोपकार में लगी है।

आज वैज्ञानिक ओजोन पर्त की झिल्ली जिसे वैदिक भाषा में 'उल्ब' कहते हैं, उसे भरने की चिन्ता से ग्रस्त हैं। इस पर्त के एक बार नष्ट होने पर इसे पुनः बनाने में २० वर्ष तक लग सकते हैं, लेकिन अथर्ववेद में ऋषियों ने इसकी सुरक्षा का एकमात्र उपाय यज्ञ का स्निग्ध धुंआ ही बताया है। कैंसर रिसर्च इंस्टिट्यूट जर्मनी के एक वैज्ञानिक का अनुभव इस प्रकार है - After i

tested Agnihotra myself it really seems that with Agnihotra you have a wonder weapon against pollution in your hand. (अग्निहोत्र-प्रकाश) चेचक के टीके के आविष्कारक डॉ. हैफकिन (फ्रान्स) का कथन है कि घी के धुंए से रोग के कीटाणु मर जाते हैं। तात्पर्य यह है कि समस्त चराचर जगत यज्ञ की भावना से ओतप्रोत है। यज्ञ केवल कर्मकाण्ड ही नहीं, 'धरती का लघु सूर्य' है, इससे पृथ्वी, जल, वायु तथा रोगों की निवृत्ति पर्यावरण की शुद्धि और परमात्मा की उपासना के साथ आत्मा को भी शांति मिलती है।

आज के पर्यावरण पर मंडराते संकट को वैदिक शैली ही प्रदूषण मुक्त कर सकती है। यही संस्कृति मानव-जीवन को सुसंस्कृत कर कल्याण के पथ पर ले जा सकती है। यज्ञ केवल-मात्र कर्मकाण्ड ही नहीं यह पर्यावरण की शुद्धि का वेद सम्मत माध्यम है, एक शुद्धिकरण की भौतिक प्रक्रिया है। इससे वायुमण्डल में परिवर्तन के साथ पर्जन्य वृष्टि का उद्देश्य भी पूर्ण होता है। यज्ञ वेदों द्वारा निर्दिष्ट शुद्ध मानवीय प्रक्रिया है। यज्ञ यजमान को स्वर्ग प्राप्ति कराता है अर्थात् शुद्ध पर्यावरण देकर स्वस्थ जीवन के साथ भौतिक सुख विशेष की प्राप्ति में सहायक होता है। प्रकृति के असंतुलन को यज्ञ संतुलित करता है।

यदि वैश्विक परिप्रेक्ष्य में हम वैदिक यज्ञमय दृष्टिकोण को अपनाकर चलें। तो पर्यावरण संरक्षण के लिये प्राकृतिक पदार्थों की यथास्थिति बनी रहेगी। जीवन और पर्यावरण का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। इसलिये वैदिक काल से ही यज्ञ के द्वारा शुद्ध पर्यावरण में मानव शत वर्ष तक स्वस्थ रहकर जीने की कामना से पूरित रहा है। प्रकृति में जो जल, वायु, भूमि, वनस्पति और जीव-जन्तु दिखाई देते हैं, ये सभी पर्यावरण की रक्षा करते हैं, याज्ञिक वातावरण में इन सभी का पूर्ण संरक्षण होता था, किन्तु आज ये सभी संरक्षण विहीन हो गए हैं। अतः पर्यावरण की एक विकट समस्या विश्व के सामने उपस्थित हो गई है। आधुनिक पर्यावरण शुद्धि के उपाय एकांगी एवं मानव के क्षणिक हितों को ध्यान में रखकर निरूपित किये गए हैं, जब कि प्राचीन चिन्तन में निरूपित उपाय समस्त पञ्च-महाभूत प्रकृति की शुद्धि की समग्रता लिये हुए सर्वाङ्गीण एवं सार्वकालिक हैं। यज्ञ द्वारा पर्यावरण की शुद्धि के ऋषियों के द्वारा निर्देशित उपाय केवल स्थानीय व मानवीय हित पर ही केन्द्रित नहीं हैं, अपितु इनमें पूर्णतः पारिस्थितिक संतुलन की सदिच्छा विद्यमान है। इसी में प्राणी जगत् का पूर्ण और वास्तविक हित सुरक्षित है।

आज भी यज्ञ की भावना देवपूजा, संगतिकरण और दान को विश्व चेतना के साथ तादात्म्य कर, उसे जागृत कर संपूर्ण विश्व का कल्याण किया जा सकता है। यह कार्य विश्वजनीन होना चाहिए तभी प्रकृति का संरक्षण, संवर्धन और संतुलन हो सकेगा।

वर्तमान वैज्ञानिक युग के इस पर्यावरणीय प्रदूषण को देखते हुए मैंने भी यह अनुभव किया कि ऋषि मुनियों की अनुप्राणित पद्धति को अपनाने पर ही इस प्रदूषण रूपी राक्षस का अंत हो सकता है। इस तथ्य को प्रबुद्ध समाज तो समझ रहा है तथा अनेकानेक प्रयोगों के द्वारा चमत्कृत होकर उससे लाभान्वित भी हो रहा है, किन्तु अभी भी इस भूमंडल के विशाल जन-समुदाय को यज्ञ के लाभों से अवगत कराना तथा उनमें ऐसी जागरूकता लाना कि अपनी प्राचीन जीवन शैली अपना कर सभी घर-घर में यज्ञ-यागादि द्वारा वातावरण को शुद्ध-पवित्र कर दें। प्राणी-मात्र निरोग सुखी एवं समृद्ध हो।

इसी भावना ने इस कार्य के लिए प्रेरित किया। आत्मवत् सर्व भूतेषु, वसुधैव कुटुम्बकम् - की भावना का सर्वत्र प्रसार हो। इस संसार में विचरण करते हुए हम सृष्टि और अपने में पंचमहाभूत तत्वों की उपस्थिति के प्रति सजग और संवेदनशील रहें। जागृत मनुष्य जिसके ज्ञान-चक्षु खुले हैं वह श्रेष्ठ कर्म करता है श्रेष्ठतर करता है और श्रेष्ठतम कर्म यज्ञ भी करता है। या भारतीय संस्कृति का रचनात्मक आदर्श है तथा यज्ञ भारतीय जीवन पद्धति का अपरिहार्य अंग है। पूर्व मीमांसा दर्शन में धर्म का अर्थ ही यज्ञ किया गया है तथा पूर्वजों का सर्वोपरि कर्म सदा यज्ञ-कर्म करना ही रहा है। अन्त में इस शोध - प्रबन्ध के द्वारा यह सिद्ध करना चाहती हूं कि प्राचीन ऋषि-मुनियों द्वारा प्रतिपादित यज्ञादि प्राचीन शैली तथा मानदण्ड को आचरण में लाया जाए तो निश्चय ही इस सर्वजन हिताय सर्वजन सुखाय कर्म के द्वारा विश्व को सुख - समृद्धि से पूरित किया जा सकता है। वेदों में पर्यावरणीय तत्वों तथा मनुष्य का परस्पर सम्बन्ध बताते हुए कहा है। यत्पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे अर्थात् जो पञ्चमहाभूत प्रकृति में है, उसी से यह शरीर भी बना है। अथर्ववेद में कहा है

सूर्यो मे चक्षुर्वातः प्राणोऽन्तरिक्षमात्मा पृथिवी शरीरम् ।

अस्तृतो नामाहमयमास्मि स आत्मानं निदधे द्यावापृथिव्यां गोपीधाय ॥⁵⁰³

सूर्य मेरा नेत्र है, वायु मेरा प्राण है, अन्तरिक्ष मेरी आत्मा (हृदय) है और पृथिवी मेरा शरीर है। मैं अपने आपको अपराजित समझ कर द्यावा और पृथिवी के बीच में सुरक्षित रखता हूं। यह मन्त्र पिण्ड और ब्रह्माण्ड का स्पष्ट सम्बन्ध बतलाता है। यजुर्वेद के दूसरे स्थानों में है कि -

नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥⁵⁰⁴

यहां भी वही सम्बन्ध वर्णित है। वेदों में इस प्रकार के बहुत वर्णन हैं। इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पिण्ड के साथ ब्रह्माण्ड का घनिष्ठ सम्बन्ध है। यह बात प्रत्यक्ष भी है कि बिना सूर्य के हम देख नहीं सकते, बिना वायु सांस नहीं ले सकते और बिना पृथ्वी के खड़े नहीं हो

503 अथर्व.- ७.८.७

504 यजु.पुरुषसूक्त - ९

सकते । यह भी कहा है कि ब्रह्माण्ड के पञ्च तत्वों से बने इस शरीर को अन्त में उन्हीं पांच तत्वों में विलीन हो जाना है, समा जाना है, अतः ऋग्वेद में शरीर रूपी पञ्चतत्वों को पर्यावरणीय पञ्चतत्व में समा जाने का आदेश है -

ॐ सूर्य चक्षुगच्छतु वातमात्मा, द्यां च गच्छ पृथिवी च धर्मणा ।

आपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितम् । औषधीषु प्रतितिष्ठा शरीरैः। स्वाहा ।⁵⁰⁵

तात्पर्य यह है कि पृथ्वी जल वायु अति आकाश सूर्य मनुष्य, जलचर, नभचर थलचर, वनस्पतियां औषधियां, वृक्ष वनस्पतियां आदि की रक्षा-सुरक्षा का ध्यान रखना सभी मनुष्यों का कर्तव्य है। वैदिक संस्कृति के ज्ञान से, विद्वानों, वैज्ञानिकों तथा चिकित्सकों के द्वारा किये गए प्रयोगों को पढ़कर अपनी अल्प बुद्धि से समझकर तथा यज्ञरूपी महा- विज्ञान के अथाह सागर की एक बूंद लेकर कुछ विचार व्यक्त किये हैं, इनसे घर- घर में यज्ञाग्नि प्रज्वलित हो, जिससे सम्पूर्ण विश्व का पर्यावरण शुद्ध सुगंधित व सुखदायी हो । इस भावना के साथ यह प्रयास अनवरत चलता रहेगा ।

सन्दर्भग्रन्थसूची –

प्राथमिक स्रोत –

१. ऋग्वेदः (स्कन्दस्वाम्युद्गीथीयभाष्याभ्यांवेङ्कटमाधवीयव्याख्यया सायणभाष्यनुसारिणिमुद्रलीया वृत्या समवेतः) (सं.२०२२) (सम्पा. मण्डल) विश्वबन्धुः एवमन्यः, होशियारपुरम्; विश्वेश्वरानन्द वैदिकशोधसंस्थानम्।
२. ऋग्वेदसंहिता (सायणाचार्यविरचित माधवीयवेदार्थप्रकाशसंहिता)
(द्वि.सं. १९८५) (सम्पा.) मोक्षमूलर भट्टः, वाराणसी: चौखम्बा कृष्णदास अकादमी।
३. शुक्लयजुर्वेद काण्वसंहिता सायणभाष्योपेता सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः वाराणसी : १९७८
४. अथर्ववेदः (शौनकीय) (सायणाचार्यकृतभाष्यसंयोजितः) (१९८६) (सम्पा.) मण्डन मिश्रः, दिल्ली: श्री लालबहादुरराष्ट्रिय संस्कृतविद्यापिठम्)
५. ऋग्वेदभाष्यम् (दयानन्द सरस्वती) (२००४) (सम्पा.) दयानन्द अर्पण, नई दिल्ली: भगवती लेजर प्रिंटस।
६. अथर्ववेदभाष्यम् (दामोदरसातवलेकर) (२००५) (सम्पा.) दयानन्द अर्पण, नई दिल्ली: विश्वमानवोत्थानपरिषदः।
७. यजुर्वेद-भाष्य-संग्रह (१९६०) (दयानन्द सरस्वती) (सम्पा.) युधिष्ठिर मीमांसक, बडौदा: आर्य कुमार महासभा।
८. अथर्ववेद संहिता (हिंदी अनुवाद), आर्य सा. मंडल, अजमेर : सं. २०१२
९. ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका (दयानन्द सरस्वती)

द्वितीयक स्रोत –

1. Yogavidhisamiksanam(s) Sastri Dulat Ram Delhi (V) 2000 V. Varidhi
2. Yajna and Karma as is instruments of self culture and fulfillment in Hindu thought- Rama Murthy, K. my sore (In Progress)
3. Yajna, Concept of in the Rgveda Pathak , Naresh Chandra Rajashan ,1965,Ph.D
4. Yajna Concept of in Vedic Literature-Langayan. Rambhagath Kurukshetra 1983,Ph.D
5. Yajnapaddhati of Katyana-Srutasastra, Critical Study of the srutsutra, Specially with reference to (H)-Dwivedi, Manoharala. Agra, 1962 PhD

6. Yajnavijnana:Anusandhantmakā Vivecama (H)-Saxena Sunilkumar Jaipur,(In Progress)
7. Yajnika. Mulasankara. Manikalala Study of the Sanskrit dramatic works of(H)-Misra, Sasi. Banaras, 1983,Ph.D
8. Atiratrayajvam,Contribution of , to Sanskrit Literature- Jayashree,S Madras,1983,Ph.D
9. Soma in Vedic Sacrifices- patil,Gajanan Moreswar Bombay,1952,Ph.D.
10. Sacrifices in the Rgveda- Potdar, Krishnaji Raghunath Bombay, 1956, Ph.D.
11. Sacrifices,Critical study of yajnavalkyas contribution to the rituals of some important vedic tripathi Asha Allahabad, 1965, Ph.D
12. Agnistoma-Yajna in Yajurveda and its Practice (H).-Sharma, Narayan Datt Meerut,1985,Ph.D.
13. Acharya Priyarata Sharma, Dravyaguna-vijnana 2006,Chaukhamba bharthi academy, Publisher and distributor of monumental treatises of the east Gokulbhavan, K 37/109, Gopalmandir lane Varanasi
14. Dr.J.L.N Shastri, Forwarded by Dr.K.S. Jayashree, dravyaguna Vijnana,2006,Chaukhamba oriental, Varanasi.
15. Ed.G.N Bhat, Relevance of plants herbs and materials used in the rituals, 1998, center for inter disciplinary Studies and research in Sanskrit Canara Collage, Managlore.
16. Shrirama Sharma Acharya, the integrated Science of Yajana ,2001, Shantikunj Haridwar.
17. S, Gyanashruti, and S. Srividyananda, Yajna - A Comprehensive Survey, 1st ed. Yoga Publications Trust: Mungar, Bihar, 2006, pp.18-20.
18. S. Ramsukhdas, Srimad Bhagavadgita - Sadhaka-Sanjivini, 9th ed., Vol. I, Gita Press: Gorakhpur, 2010, pp.538-539.
19. S. Sushrutha, M. Hegde, H. R. Nagendra, and T. M. Srinivasan, "Comparative study of Influence of Yajña and Yogāsana on stress level as Measured by Electron Photonic Imaging (EPI) Technique", International Journal of Science and Research, 2014, 3(8), pp.1402-1406.

20. S. Kar, "Agnihotra: The Vedic Practice for the Purification of Environment and Modification of Human Behavior". The International Journal of Religion and Spirituality in Society, 2012, 2(3), pp. 69-74.
21. N. M. Rao, S. Duvvuri, H. R. Naik, G. M. Kiran, and M. G. Srivatsav, "Environmental Impacts of Homam - A Case Study (at Sridevi Veda Vidyalayamu, Srisailam). 2012 International Conference on Environmental Science and Technology IPCBEE vol.30, 2012 IACSIT Press, Singapore, pp. 83-86.
22. S. Kratz, and E. Schnug, Homa Farming - a Vedic fire for agriculture: Influence of Agnihotra ash on water solubility of soil P. Landbauforschung Völkenrode, 2007, 3(57), pp.207-211.
23. H. J. Devi, N. V. C. Swamy, and H. R. Nagendra, "Effect of Agnihotra on the germination of rice seeds. Indian Journal of Traditional Knowledge, 2004, 3(3), pp.231-239.
24. G. T. Singh, H. R. Nagendra, and R. Nagarathna, "Effect of deep relaxation technique on the capacity to influence REG- A randomized control trial", Indian Journal of Traditional Knowledge, 2009, 8(3), pp.459-463
25. N. Recca, Gayatri Mantra – A Study and Part II: Role of Gayatri Mantra in Optimizing the Random Event Generator (MSc – unpublished), SVYASA Yoga University: Bangalore, 2005
26. K. Korotkov, D. Orlov, and K. Madappa, "New Approach for Remote Detection of Human Emotions". Subtle Energies &Energy Medicine, 2009, 19(3), pp.111-125.
27. Ramachandra G Bhat, "Veda Vijnana Paramyam", Veda Vijnana Gurukulam, Bangalore 2013.
28. Sacrifices, understanding of the Brahmanas. Mishra Viswambhar Gorakhpur.1981 Ph.D
29. R. Tulsi, "Rigveda Vol. I," 1st ed. Vijaykumar Govindram Hasanand, Delhi; 2013. p. 1

30. S. Gyanashruti, S. Srividyaanda. "Yajna A Comprehensive Survey". Yoga Publications Trust, Ganga Darshan, Munger, Bihar, India.; 2006. p. xv + 370.
31. Bheemacharya. "Nyaya Kosha." 3rd ed. Chaukamba Surabharati Prakashana; 2011. p. 665.
32. S.R.S. Acharya. Yajna ka Jnana Vijnana. 2nd ed. Brahmavarchas, editor. Akhanda Jyoti Samsthana, Mathura, 1998.
33. R. K. Murti, "Veda and Yajña in Indian tradition," Indian Journal of Traditional Knowledge, 6(4), pp. 687–91, 2007.
34. R. Surendra, H. R. Nagendra. "Effect of Aphoryama yajna on people and environment,". Indian Journal of Traditional Knowledge, 6(3): pp. 412–416, 2007.
35. B. Yogitha, R. Nagarathna, E. John, H.R. Nagendra, "Complimentary effect of yogic sound resonance relaxation technique in patients with common neck pain," International Journal Of Yoga, 3(1), pp. 18-25, 2010.
36. Shreeharikrishnadasa Goyandaka. "Shrimad Bhagavad-Gita, Shankara Bhashya". 28th ed. Geeta press, Gorakhpur, 1988.
37. Sheshanavartna. "Manusmruti". 3rd ed. Samaja Pustakalaya Shivaji Beedi, Dharavad; 2011.
38. Venkateshan, R., "*Fire – the healer – Agnihotra for equilibrium of nature and enhancement of human life*", Proceedings of Triadic National Seminar on Bhaskariyam, Bharatiyam and Dhanvantariyam, Held at Indian Heritage Academy, Bangalore, Dec – 2006, p.168 – 171.
39. Acharya, S. R. S. (1998). *Yajna ka Jnana Vijnana*. (Brahmavarchas, Ed.) (2nd ed.). Akhanda Jyoti Samsthana, Mathura 281003.
40. Devi, H. J., Swamy, N. V. C., & Nagendra, H. R. (2004). Effect of Agnihotra on the germination of rice seeds, 3(July), 231–239.
41. Gyanashruti, S., & Srividyaanda, S. (2006). *Yajna A Comprehensive Survey* (p. xv + 370). Yoga Publications Trust, Ganga Darshan, Munger, Bihar, India.

कोशग्रंथ-

1. शब्दकल्पद्रुमः, राजाराधाकान्त, सम्पादक, वसुना वरदाप्रसाद, वसुना हरिचरण, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली : २०१५
2. दार्शनिक संप्रत्यय – कोश,(Dictionary of Concepts in Indian philosophy) सम्पादक,शशिप्रभाकुमार, संतोष कुमार शुक्ल, रामनाथ झा, विशिष्ट संस्कृत अध्ययन केन्द्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, न्यू दिल्ली : प्रथम संस्करण, २०१४.
3. संस्कृतशब्दार्थ- कौस्तुभम्, द्वारिका प्रसाद, तारणीश झा, राम नारायण लाल,बेनी प्रसाद,इलाहबाद : १९७३.
4. संस्कृत-अंग्रेजी शब्दकोश, मोनियर विलियम्स, मोतीलाल बनारसी, दिल्ली : १९९३.
5. संस्कृत-हिंदी कोश, वी. एस. आप्टे, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली : १९७३.
6. निरुक्त (निघंटु सहितम्) व्याख्याकार ,शास्त्री सीताराम,दिल्ली, परिमल पब्लिकेशंस षष्ठ संस्करण २०१४
- 7.अमरकोश (रामाश्रमी व्याख्या विभूषित) संपादक, हरगोविंद शास्त्री,चौखंबा संस्कृत संस्थान,वाराणसी

२००७